जय कृष्णा
जयकन्याकुमारी

जय कृष्णा
जयकन्याकुमारी

जय कृष्णा : जय कन्या कुमारी

(दक्षिण भारत का रोचक यात्रा-संस्मरण)

लेखक और प्रकाशक

श्री तेजनारायण टण्डन

हिन्दी साहित्य भण्डार

५५, चौपटियाँ रोड, लखनऊ २२६ ००३

संस्करण द्वितीय १९८१ मूल्य : 10.00
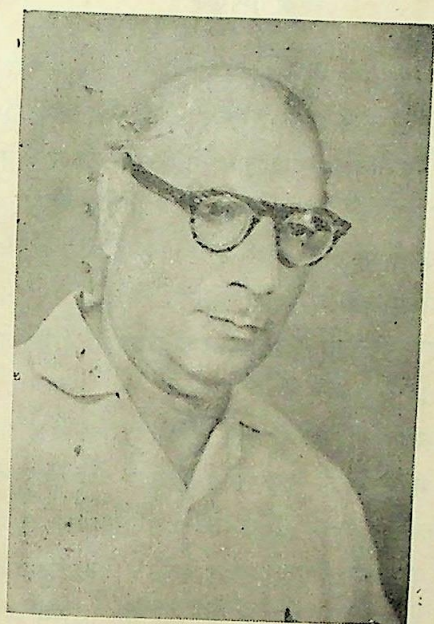
समर्पण

पूज्य अग्रज

स्वर्गीय डॉ० प्रेमनारायण टंडन, पी-एच०डी

(रीडर : हिन्दी-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय)

की

पुण्यस्मृति में

सादर-श्रद्धा सहित

नम्र निवेदन

परमपिता परमात्मा की अनुकम्पा से इन तेईस वर्षों में दक्षिण भारत की चालीस बार यात्रा कर चुका हूँ जिनमें बीस बार रामेश्वरम् तथा पंद्रह बार कन्याकुमारी जाने का सुयोग प्राप्त हुआ है। हमारे अनेक गुरुजनों और मित्रों (जिनमें डॉ० शंकर राजू नायडू, डॉ० एम० राजेश्वरैय्या आदि प्रमुख हैं) के आदेश की पूर्ति हेतु यह दक्षिण भारत का यात्रा संस्मरण आपकी सेवा में प्रस्तुत है। अपनी समझ में मैंने इसे रोचक और प्रेरणादायक बनाने का यथासंभव प्रयत्न किया है।

मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि इस पुस्तक को पढ़कर हमारे पाठक दक्षिण भारत की यात्रा की योजना बनायें तभी मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा। उनको इस सम्बन्ध में जो जानकारी चाहिए, मैं देने का यथासम्भव प्रयत्न करूँगा। आज भावात्मक एकता का तकाजा है कि उत्तर भारत में जो भी समर्थ हैं उन्हें अवश्य दक्षिण भारत जाना चाहिए।

यह पुस्तक उत्तर दक्षिण की भावात्मक एकता बढ़ाने के लिए एक कदम है। प्रसन्नता की बात है कि कर्नाटक पी०यू०सी० बोर्ड ने इसके महत्व को समझा और इसे विद्यार्थियों के लिए नियत किया। मैं हृदय से उनको धन्यवाद देता हूँ। आवरण है, अन्य प्रदेशों के शिक्षा धिकारी भी ऐसा ही करेंगे—

इसे मैंने प्रामाणिक बनाने का भरसक प्रयत्न किया है, फिर भी भूलें रह जाना संभव है। इस संबंध में जो सुझाव मिलेंगे, उनका मैं स्वागत करूँगा।

—तेजनारायण टंडन

जय कृष्णा : जय कन्या कुमारी

हमारा भारत देश—जिसमें हम सब रहते हैं—बहुत विशाल और महान् है। हमें तो अँग्रेजों से छुटकारा पाए अभी पचीसेक वर्ष ही हुए हैं, पर कोई जमाना हमारा भी था जब सारे संसार में हमारी भी हुकूमत चला करती थी। हमीं ने सबको ज्ञान का प्रकाश भी दिया था।

हमारा देश इतना विशाल है कि एक ही समय में हिमालय के आसपास बर्फ गिरती है तो सुदूर दक्षिणी भारत में इतनी गर्मी होती है कि लोगों को हल्के कपड़े पहन कर पंखे के नीचे बैठने पर भी पसीना आता है।

भारत के नक्शे को ध्यानपूर्वक देखा जाय तो पता चलेगा कि विंध्याचल और सतपुड़ा पहाड़ हमें दक्षिण भारत से अलग कर देते हैं। इसी के कारण उत्तर और दक्षिण भारत के मध्य आवागमन में पहले बड़ी कठिनाइयाँ होती थीं, फिर भी जाने वाले किसी प्रकार जाते ही थे।

सातवीं शती में महाप्रभु शंकराचार्य हुए थे। यह दक्षिण भारत में मलाबार में पैदा हुए थे जो अब केरल कहलाता है। धुर दक्षिण में जन्म लेकर उन्होंने उत्तर में धार्मिक विजय प्राप्त की थी और डगमगाते हिंदू धर्म को बलवान बनाया था।

इन्हीं शंकराचार्य जी ने भारत की भावात्मक एकता का बड़ा सुन्दर उपाय निकाला। ये धर्मगुरु थे ही, इन्होंने भारत के उत्तर-

दक्षिण, पूरब-पश्चिम—चारों ओर चारों कोणों पर अपने चार मठ स्थापित किए और यह व्यवस्था की कि प्रत्येक हिन्दू को इन चारों स्थानों पर अवश्य जाना चाहिए नहीं तो उसकी मुक्ति नहीं होगी—उसे स्वर्ग नहीं मिलेगा। उत्तर में बद्रीनाथ-केदारनाथ, दक्षिण में रामेश्वरम्-कन्याकुमारी, पूर्व में श्रीजगन्नाथपुरी और पश्चिम में द्वारिकापुरी की यात्रा उन्होंने प्रत्येक समर्थ हिन्दू के लिए अनिवार्य कर दी।

इसका सुपरिणाम यह हुआ कि उत्तर का हिन्दू विंध्याचल पहाड़ को किसी भी प्रकार से पार करके श्री रामेश्वरम-कन्याकुमारी जाता और उसी प्रकार दक्षिण का हिंदू प्रयाग, अयोध्या, काशी, श्री बद्री-केदार आदि जाता और इस प्रकार दोनों अपने जीवन को धन्य बनाते। पूर्व और पश्चिम की यात्रा में उस समय कोई कठिनाई भी नहीं थी। (अब भी नहीं है।)

हिन्दुओं के अतिरिक्त मुसलमान, ईसाई, सिक्ख आदि भी उत्तर-दक्षिण आते-जाते रहते थे। मुसलमानों को हैदराबाद, बीजापुर, गोलकुंडा आदि मुसलिम रियासतों और धर्म स्थानों के भग्नावशेष देखकर सुख मिलता तो सिक्खों को नांदेड (मराठवाड़ा) में गुरु गोविन्द सिंह की समाधि संतोष देती और ईसाइयों को कोचीन के प्राचीन चर्च का शुभ दर्शन आह्लादित करता है।

आज भारतीय रेलें बहुत तरक्की पर हैं। सभी अगम्य स्थानों पर रेलें बिछ जाने से सबके आवागमन में बड़ी सुविधा हो गई है। हैदराबाद से दक्षिण एक्सप्रेस, मद्रास से जी० टी० एक्सप्रेस तथा मंगलौर और कोचीन से जयन्ती जनता एक्सप्रेस जैसी अति शीघ्र चलने वाली गाड़ियों ने साधारण वर्ग के भारतीयों को उत्तर-दक्षिण

आने-जाने की काफी सुविधा प्रदान की है, वहाँ धनिक वर्ग के लिए अतिस्वन बोईंग विमान बहुत ही कम समय में—चन्द घण्टों में—ऊपर-नीचे पहुँचा दिया करते हैं।

हमारा दक्षिण भारत बड़ा मनोहर और समृद्धिशाली है। वहाँ की यात्रा करके यह विश्वास होने लगता है कि रामायण की यह बात सच है कि कभी लंका सोने की रही होगी। केरल तो दक्षिण का काश्मीर है। पूरे दक्षिण में चारों ओर छायी हरीतिमा, धान के हरे-भरे खेत बड़े प्यारे लगते हैं। यदि हमारे यहाँ पन्ना राज्य में हीरे की खान है तो कर्नाटक राज्य में कोलार जिले में सोने की खान है जहाँ भारत की आवश्यकता का 1/6 हिस्सा सोना मिल जाता है। यही नहीं, वहीं कोलार में राबर्टसनपेट नामक आधुनिक सुख-सुविधाओं से सम्पन्न ऐसी बस्ती भी है जो जमीन के दस हजार फीट नीचे सुव्यवस्थित बसी है जिसे देखे बिना कल्पना करना भी कठिन है।

उत्तर भारतवासियों के लिए रेल द्वारा दक्षिण की तरफ जाने के लिए कई रास्ते हैं। एक रास्ता कलकत्ता, कटक, वाल्टेयर होकर है। दूसरा इलाहाबाद, कटनी, रायपुर, विजयनगरम् होकर है। तीसरा रास्ता झाँसी, नागपुर, काजीपेट, विजयवाड़ा होकर है। चौथा बम्बई, पूना, सिकन्दराबाद, गुंटकल होकर है। पाँचवा मनमाड, औरंगाबाद, नांदेड होकर है। छठा, बम्बई, शोलापुर, बीजापुर, गदग होकर है। सातवां और अन्तिम पूना, मिरज, बेलगाम होकर है।

मुझे प्रारम्भ से ही भ्रमण करने का बड़ा चाव रहा है। बचपन में मुझे रेल की पटरियाँ और रेलगाड़ी देखने की बड़ी ललक रहा करती थी। घण्टों रेल की पटरी के किनारे यह निश्चय करके बैठा

हैं (इसी प्रकार बम्बई, पूना, रायचूर की तरफ से आने वाली गाड़ियाँ वाडी जंक्शन होकर हैदराबाद-सिकन्दराबाद आती हैं)। काजीपेट से लगभग 135 किलोमीटर की दूरी पर सिकन्दराबाद है और सिकन्दराबाद से हैदराबाद केवल 10 किलोमीटर है। इसी से इन दोनों महानगरों को 'जुड़वाँ शहर' (Twin City) कहा जाता है और बड़ी तेजी से कोशिश हो रही है कि दोनों के बीच के फासले को जल्द आबाद करके दोनों को एक कर दिया जाय। तब हैदराबाद भारत का तीसरा बड़ा शहर हो जायगा।

हमारी गाड़ी जब काजीपेट पहुँची तब दोपहर हो चुकी थी। हमारा डिब्बा काटकर पैसेंजर में जोड़ा गया था। एक बजे पैसेंजर चल पड़ी। भीड़ के कारण सबेरे से कुछ खा-पी नहीं सका था। रात भर का जागरण, लम्बे सफर की थकावट और भूख-प्यास की तेजी से शरीर अवसन्न-सा था। दो-एक स्टेशन निकल जाने पर एक स्टेशन पर शरीफे बेचने वाला डिब्बे में आया। बड़े अच्छे पाव-पाव भर के शरीफे थे। इनको आंध्र में सीताफल कहते हैं। मैंने एक सीताफल लिया। एक आने का था। खाया तो बड़ा मीठा लगा। सब खा गया। चाट-चाटकर खा गया—भूखा होने के कारण। मन को तृप्ति नहीं हुई। अगले स्टेशन पर फिर सीताफल बिक रहे थे। मैंने एक को आवाज दी। जब वह पास आ गया तो पास बैठे एक मुसाफिर ने मुझे रोक दिया और स्थानीय भाषा में उससे भाव-ताव करके 5 सीताफल एक आने में लेकर मुझे दे दिये। मैं चकित। यहाँ भी इतना मोल-तोल होता है! मन ही मन उसे धन्यवाद दिया।

लेकिन अब सीताफल बहुत थे। बड़ी मुश्किल से दो और खा पाया। बचे तीन तो एक उसी सहयात्री को तथा शेष दो पास बैठे

बच्चों में बाँट दिए। उसने एक सीताफल के बदले में एक सीख और दी—खाली पेट सीताफल कभी नहीं खाना चाहिए क्योंकि पेट में
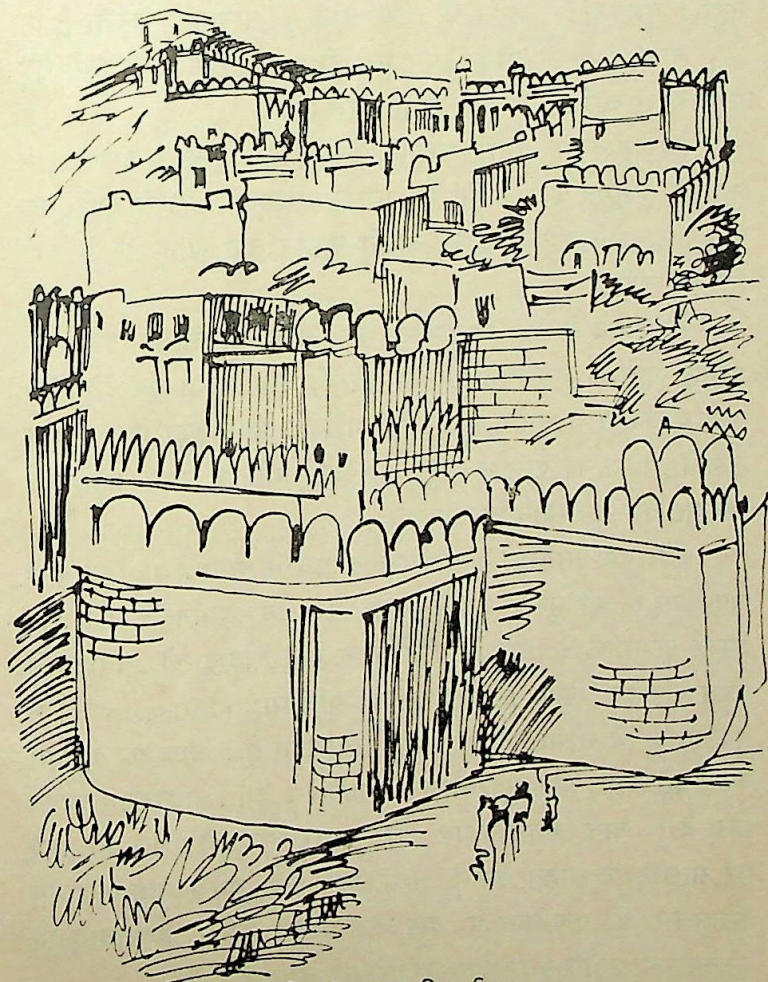
गोलकुंडा का प्रसिद्ध किला

मरोड़ होने लगती है। जब पेट भरा हो तब भी दो-एक ही खाने चाहिएँ। मैं सवेरे से तुम्हारे साथ हूँ। तुमने कुछ भी खाया-पिया नहीं। तुम्हारा पेट खाली है। तब तुम्हें नुकसान कर सकता है।

लाख रुपये की सीख उसने मुझे दी। सफर में कभी-कभी ऐसे परोपकारी व्यक्ति भी मिल जाया करते हैं।

हैदराबाद तो हमारे लखनऊ जैसा ही है। अगर लखनऊ में नवाबी हुकूमत रही है तो यहाँ भी निजामशाही सैकड़ों वर्षों तक रही है। इसलिए यहाँ हिन्दी बोलने-समझने तथा खाने-पीने में कोई दिक्कत नहीं होती।

हैदराबाद से 15 किलोमीटर दूर गोलकुंडा नामक इतिहास-प्रसिद्ध किले के भग्नावशेष हैं जो तब की याद ताजा कर देते हैं। इसी गोलकुंडा ने मुगल सम्राट औरंगजेब के छक्के छुड़ा दिए थे और उसकी ताकत को ऐसा चूर-चूर कर दिया था कि मुगल सम्राट के मजबूत खंभे डगमगाने लगे थे।

हैदराबाद यात्रियों पर अच्छा प्रभाव डालता है। निजाम ने अपने शहर को सुन्दर बनाने में सब तरह का प्रयत्न किया। सर मिर्जा इस्माइल ने अपने दीवान काल में हैदराबाद को सँवारने में बहुत परिश्रम किया। सालारजंग म्यूजियम (Museum) ने हैदराबाद की शोभा को चार चाँद लगा दिए हैं। आज यह एशिया का सबसे बड़ा और सुव्यवस्थित म्यूजियम है। सालारजंग साहब धन्य हैं। जाने कितने नवाब और वजीर आये और चले भी गये पर सालारजंग साहब अपना नाम अमर कर गये। इस अनुपमेय संग्रहालय को एक दिन में देख लेना संभव नहीं। हैदराबाद भी लखनऊ की भाँति सुंदर बाग-बगीचों का शहर है।

हैदराबाद की दूसरी शान है—चार मीनार और उसके घेरने वाले चार मेहराबदार कमान जो अपना सानी नहीं रखते। जैसे लखनऊ का आसफउद्दौला का इमामबाड़ा अपना भव्य हॉल और भूल-भुलैया के लिए प्रसिद्ध है उसी प्रकार चार मीनार अपनी मीनारों और कमान के लिए प्रसिद्ध है। मीनार पर चढ़ने देते हैं। ऊपर चढ़कर वहाँ से हैदराबाद और 10 किलोमीटर दूर बसे सिकंदराबाद की झाँकी भी बड़ी मनोहर लगी। निजाम की पुरानी राजधानी गोलकुंडा के भग्नावशेष भी धुँधले दिखाई दिये। ऊपर ही एक छोटी सी भूलभुलैया है और दूसरे कोने पर नमाज़ पढ़ने के लिये एक छोटी-सी मस्जिद भी।

चार मीनार के पास ही निजामशाही की सर्वश्रेष्ठ कृति मक्का मस्जिद है। कहते हैं कि इसको बनाने के लिए मक्काशरीफ से मिट्टी लाई गई थी। इस कारण से इसे मक्का मस्जिद बोलने लगे, वैसे इसका बहुत प्यारा नाम मोती मस्जिद है। इस सुप्रसिद्ध मस्जिद में काले आबनूसी (Jet Black) रंग के पत्थर का एक चबूतरा है। किंवदन्ती यह है कि इस पत्थर के चबूतरे पर जो भी परदेशी एक बार बैठ जाता है वह बार-बार हैदराबाद आता है। कौतूहलवश मैं भी उस काले चबूतरे पर बैठा। बैठा ही नहीं, लेट भी गया (थकान के कारण)। कदाचित उसी बैठने-लेटने का यह प्रभाव है कि मैं बार-बार हैदराबाद आता हूँ और मेरे कार्य क्षेत्र में हैदराबाद-सिकन्दराबाद का प्रमुख स्थान है।

सालारजंग संग्रहालय बड़ा विशाल है और अब अपनी नई विशाल इमारत में चले जाने से बहुत भव्य और उपादेय भी हो गया है। इसको अच्छी तरह देखने के लिए महीने भर का समय

चार मीनार
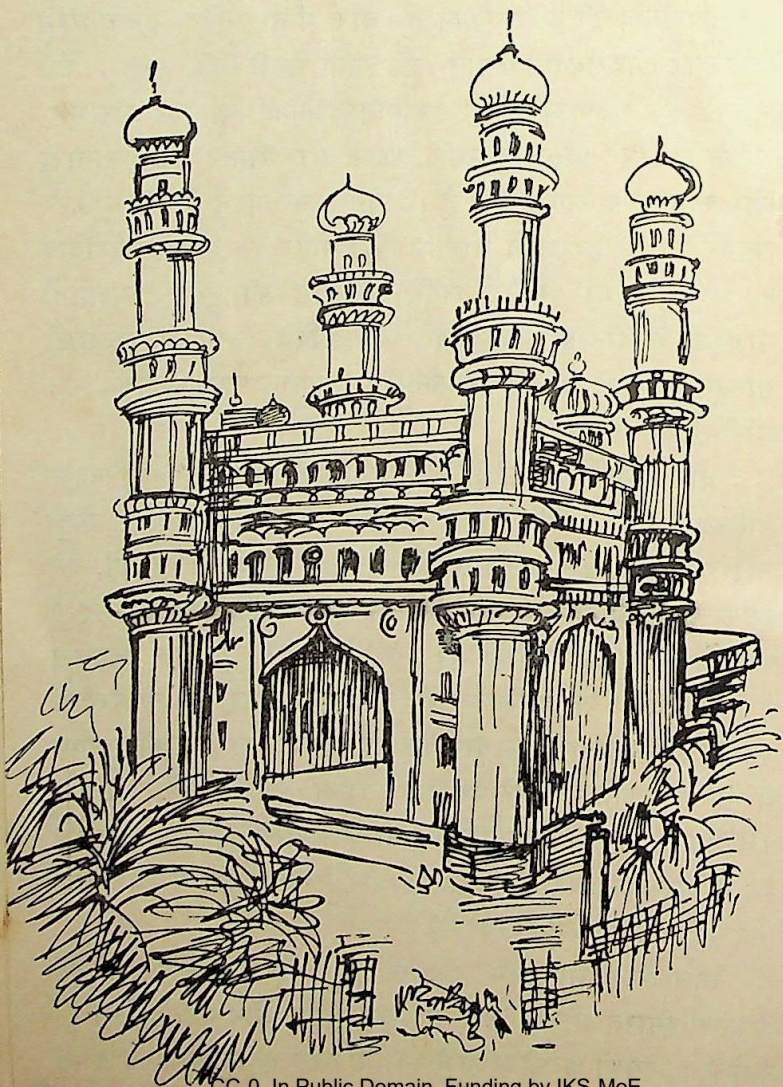
भी कम होगा। इसको देखने के लिए थोड़ी फीस भी देनी पड़ती है जो उसी की व्यवस्था में ही खर्च होती है।

हैदराबाद के आजमजाही बाजार की किसी से तुलना नहीं हो सकती। भारतविख्यात उस्मानियाँ विश्वविद्यालय की इमारत की गठन तो देखते ही बनती है। यही नहीं, निजाम अस्पताल, शाही पुस्तकालय, हाईकोर्ट, खफीफा कचहरी और हुसेन सागर (झील) भी मन को मोह लेती है।

सिकन्दराबाद बहुत सुव्यवस्थित (Well planned) है। काफी समय तक यह अँग्रेजों की छावनी रही है। अतः साफ-सुथरा और कायदे से बसाया गया है। यहाँ की सर्वश्रेष्ठ इमारत राष्ट्रपति-निलयम है। विश्वविद्यालय सिकन्दराबाद के घेरे में ही है।

जहाँ हैदराबाद में अस्सी प्रतिशत उर्दू-मिश्रित दखिनी हिन्दी बोली जाती है वहाँ सिकन्दराबाद में अस्सी प्रतिशत तेलुगु बोली जाती है। यहाँ आंध्र का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। तेलुगु सुनने में हम लोगों को थोड़ी अटपटी-सी लगती है पर है बड़ी मधुर। उर्दू वातावरण मिलने से उर्दू के काफी शब्द हैं लेकिन संस्कृत के तो अस्सी प्रतिशत शब्द मिलते हैं और वाक्य-विन्यास, व्याकरण आदि भी उसी से प्रभावित है। इसी से तेलुगु वाङ्मय (Literature) यदि नागरी लिपि में लिखा जाय और हमें संस्कृत भली-भाँति आती हो तो तेलुगु को समझने में अधिक कठिनाई नहीं होगी।

हैदराबाद देखने के बाद वापस काजीपेट आ गया। यह दक्षिण-मध्य रेलवे का दूसरा महत्वपूर्ण जंक्शन है। यहाँ उत्तर और दक्षिण की ओर जाने वाली गाड़ियों की दिशा बदल जाती है यानी आगे का इंजन निकल कर पीछे जुड़ जाता है और आध घण्टे बाद गाड़ी

उल्टी चलने लगती है। वर्धा स्टेशन पर भी ऐसा होता है पर अब वर्धा ईस्ट नामक नया स्टेशन बन जाने से गाड़ी बिना इंजन बदले आगे बढ़ जाती है।

काजीपेट जंक्शन से 10 किलोमीटर दूर वारंगल शहर है। यह कई शती पहले आंध्र साम्राज्य की राजधानी रहा था। यहाँ हनमकोंडा में उसके कुछ भग्नावशेष अब भी मिलते हैं। उस समय का प्रसिद्ध मंत्री रामय्या आज भी लोगों में पूजा जाता है।

गाड़ी नीचे चल पड़ती है और हम दोर्णाकल, खम्मम होते हुए विजयवाड़ा आ जाते हैं। पहले यह 'बेजवाड़ा' कहलाता था जो रोमन लिपि की कारस्तानी है। यह नाम तो अब भी उ० प्र० के भूतपूर्व राज्यपाल डा० बेजवाड़ा गोपाल रेड्डी के नाम के पहले लगा है।

आंध्र में नाम के आगे आदरसूचक शब्द 'गारू' लगता है जिसका अर्थ श्रीमान अथवा सिर्फ 'जी' के समान है। जैसे हमारे यहाँ नाम पुकारते समय या लिखते समय बाबू श्यामनारायण मेहरा कहते हैं उसी प्रकार उनको यहाँ श्यामनारायण मेहरा गारू पुकारते या लिखते हैं। दूसरे शब्दों में यह अँग्रेजी के Esqr का पर्याय है, जिससे उस व्यक्ति के प्रति पुकारने वाले की श्रद्धा प्रकट होती है।

आंध्र प्रदेश में विशाखापट्टनम (वैजाग या वाल्टेयर) राजमहेंद्री (गोदावरी), मछलीपट्टनम, गुंटूर आदि अनेक अच्छे और बड़े शहर हैं जिसमें विजयवाड़ा भी प्रमुख है। राजमहेंद्री में यदि गंगा के समान पवित्र नदी गोदावरी है तो विजयवाड़ा में यमुना के समान पूजनीय कृष्णा नदी का महत्व भी उससे घट कर नहीं है। इन

दोनों महानदियों ने आंध्र प्रदेश को हरा-भरा और खुशहाल बना रखा है।

आंध्र प्रदेश में पहाड़ नहीं के बराबर हैं। चारों ओर हरे-भरे धान के लहलहाते खेत मन को मोह लेते हैं। गुंटूर जिले में ज्यादा-तर बढ़िया तम्बाकू की खेती होती है क्योंकि यहाँ की काली मिट्टी बहुत उपजाऊ है और इसी से यहाँ का किसान अन्य किसानों से अधिक समृद्ध है। सिंचाई के लिए भरपूर पानी इन दोनों महा नदियों और उनकी नहरों से मिल जाता है। अतः उसे अधिक मेहनत भी नहीं करनी पड़ती है।

हमने अभी बताया कि अब हम उत्तर भारत से भिन्न एक दूसरी दुनिया में आ गये हैं। आधा अक्टूबर बीत चुका पर हमें यहाँ अपनी जेठ-वैसाख की कड़ी गर्मी मिली। खुली धूप में नंगे सिर कदम चल लेने पर खोपड़ी भिन्ना जाय। हमारे यहाँ तो इन दिनों धूप सुहानी होने लगती है। पर उत्तर भारत और यहाँ की गर्मी में एक अन्तर है। समुद्र के समीप होने के कारण यहाँ ऐसी गर्मी तो बारहों महीने रहती है पर हवा हमेशा ठंडी लगती है, उमस का यहाँ अभाव है और गरम लू भी नहीं के बराबर चलती है। धूप से बचते हुए छाहीं में चलते रहने से गर्मी अधिक नहीं सताती।

बारहों मास इस कड़ी धूप से बचने के लिए यहाँ के निवासियों ने एक उपाय निकाल लिया। यहाँ पूरा बाजार (यहाँ तक कि बैंक डाकखाने भी) सबेरे आठ बजे खुल जाते हैं और बारह बजे बन्द हो जाते हैं। इसके बाद सब लोग खाना खाने और आराम करने घर चल देते हैं। शाम को चार बजे फिर पूरा बाजार खुल जाता है और

आठ बजे फिर बन्द हो जाता है। पूरे दक्षिण भारत में (दो-एक अपवादों को छोड़कर) ऐसा ही प्रबन्ध है।

आंध्र प्रदेश में अपेक्षाकृत अधिक गर्मी है। आठ बजे से ही सूर्य भगवान ऐसी झन्नाटे की अपनी प्रभा फैलाते हैं कि अच्छा-भला आदमी भी तिलमिला जाय। माल बेचने की गरज सबको होती है। यहाँ के व्यापारियों ने उसका भी उपाय कर लिया। हर बाजार में आपस में चन्दा करके पूरी सड़क पर बाँस की खपच्ची पर फूस की छानी छा दी। अब मजे में घूमिये और खरीद कीजिए। यदा-कदा पानी की बौछार आ जाय तो उससे भी थोड़ा बचाव हो गया।

विजयवाड़ा में अनाज और फल-सब्जी की मण्डी (जिसे यहाँ वाले 'मार्केट' कहते हैं) देखने का अनायास सुयोग लग गया। रेलवे लाइन के उस पार पुराना विजयवाड़ा है। वहीं 'मार्केट' भी है। इसे हम लोगों की सब्जीमण्डी का परिष्कृत रूप समझिए। हमारे यहाँ मंडी में जैसी चीख-पुकार और शोर-गुल होता है उसका यहाँ सर्वथा अभाव है। यहाँ के आढ़ती बड़े परिष्कृत ढंग से व्यापार करते हैं। ज्यादा मोल-तोल और झिकझिक नहीं। कोई चीज लेनी है, उस व्यापारी के पास जाइए। वह आपका स्वागत करेगा, अपनी गद्दी पर बिठावेगा, चाय-काफी पिलावेगा और तब आपकी मनचाही चीज का नमूना आपके सामने रख देगा, भाव बता देगा। 'हाँ' या 'नहीं' में जवाब दीजिए। मोल-तोल नहीं। दाम वाजिब बताए जायेंगे। आपको कितना चाहिए—मन, दो मन, क्विंटल, दो क्विंटल। पता बता दीजिए। आधे घंटे में आपके पास माल पहुँच जायगा। बयाना (Advance) चाहें तो दे दीजिए। नहीं तो आपकी बात ही काफी है। नहीं-नहीं, निशाखातिर रहिये। जो नमूना दिखाया है,

वही माल मिलेगा। आपको छाँटने-बीनने की जरूरत नहीं। हम किसलिए बैठे हैं ? नमस्कार, नमस्कार।

एक हमारे यहाँ की मंडी है। उसका हाल क्या बताएँ। जाने दीजिए; जी दुखता है। हमारे यहाँ समय की कोई कीमत नहीं। दिन भर गला फाड़कर, चिल्लाकर क्या पाया ? ग्राहक को ठगकर दीन-ईमान से भी गये। अपना जी हल्कान किया और परोक्ष में ग्राहक की गालियाँ भी सुनीं। उससे यहाँ का साफ-सुथरा व्यवहार अच्छा। इसी बीच मेरे सामने एक सौदा हो चुका था। ग्राहक भी संतुष्ट और बेचने वाला भी। इस साफगोई का हम लोगों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। मार्केट भी अपेक्षाकृत साफ-सुथरा था।

हमारे मित्र पुराने विजयवाड़ा में ब्राह्मण स्ट्रीट पर रहते थे। वे मुझे अपने साथ घर ले गये। साधारण स्थिति के अपने जैसे ही खाते-पीते घर के थे। पत्नी सीधी-सादी, सद्गृहस्थिन, अतिथि को भगवान् मानने वाली। मैंने पहली बार एक आंध्रवासी का घर और रसोई देखी। बहुत लम्बे और अपेक्षाकृत कम चौड़े मकान थे। हर दरवाजे के आगे सफाई और लीप-पोतकर खड़िया-मिट्टी या चूने से गोलाकार, आयताकार चित्रकारी (रांगौली)। हर दरवाजे पर अलग-अलग ढंग की सादी पर कलात्मक चित्रकारी लोगों के मन को गुदगुदा देती है। हमारे लिए यह नई चीज़ थी जिसे देख-देखकर बड़ा सुख मिलता था। जब तक खाना तैयार हो, हर दरवाजे की चित्रकारी देख आया। हर मुख्य दरवाजा अपनी-अपनी सामर्थ्यानुसार वार्निश, वार्निशपेंट अथवा तेल से पुता हुआ स्वच्छ-सुन्दर था। आंध्र में इमारती लकड़ी की बहुतायत है, अतः सभी दरवाजे मज़बूत और भारी थे।

मेरे मित्र का मकान और ब्राह्मण स्ट्रीट दोनों ही 'गांधी हिल' की तलहटी में थे। दुर्गा जी के मन्दिर का मार्ग उनके मकान के पास होकर ही जाता था। थोड़ी देर आराम करके हम सब मन्दिर गए। मन्दिर बहुत भव्य था। भगवती दुर्गा की महिमामंडित मूर्ति के दर्शन करके सभी को आनन्द मिला।

चार बजने वाला था। मेरे मित्र दुकान जाने की तैयारी करने लगे। तब मैंने एक प्रार्थना की। रास्ते में कृष्णा केनाल पड़ी थी। अतः पवित्र कृष्णा नदी यदि पास ही में हो तो मुझे उनका दर्शन करा दीजिए, आपकी बड़ी कृपा होगी। कहानियों और पुस्तकों में कृष्णा-गोदावरी का वर्णन बहुत बार पढ़ा है। हमारी गंगा-यमुना की भाँति ही दोनों पवित्र और पुण्यदात्री हैं। दर्शन करके ही धन्य हो लूँ।

कृष्णा नदी वहाँ से दो मील थी। फिर भी वे कृपापूर्वक रिक्शे पर कृष्णा के किनारे ले गए। काफी बड़ा (लगभग एक मील चौड़ा) पाट था। मद्रास की ओर जाने वाली बड़ी लाइन का पुल बहुत सुन्दर लग रहा था। चारों तरफ शुभ्र सैकत राशि बिखरी पड़ी थी। आंध्र की यमुनारूपी कृष्णा नदी को मन-ही-मन श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और जल का आचमन करके और अपने सिर पर छिड़ककर अपने को धन्य माना—भगवती कृष्णा ! तुम्हारी जय हो। तुम दक्षिण का प्रवेश-द्वार हो। तुम्हें पार करके ही दक्षिण की ओर जा सकते हैं। मेरी दक्षिण-यात्रा सुखद सफल हो। एक बार फिर अपने पास बुलाना, बार-बार बुलाना और अपनी गोदी में नहाने का अवसर देना। आज नहीं नहा सके—इस अनजाने अपराध को क्षमा करना। तुम्हारी जय हो।

हमारे मित्र वापस गवर्नपेट अपनी दुकान पर आये। उन्होंने आंध्र की प्रसिद्ध और सुस्वादु मोसंबी (जिसे हमारे यहाँ माल्टा बोलते हैं) से नाश्ता कराया। यह भी मेरे लिए अजूबा थी। कम से कम डेढ़ पाव-आध सेर की रस भरी मोसंबी थी। खाने में बहुत अच्छी लगी। मेरे मित्र ने दिन भर मेरे साथ रहकर मेरा बड़ा उपकार किया था। उनका आभार मानकर धन्यवाद देकर सामान के साथ वापस स्टेशन आया और गुंटूर की गाड़ी की प्रतीक्षा करने लगा। उनसे अपने परम मित्र श्री देसु सत्यनारायण का अता-पता पूछ लिया था। अब उनके और मेरे बीच सिर्फ 32 किलोमीटर की दूरी मात्र थी। मन-ही-मन उनसे अचानक मिलने की कल्पना से मन पुलकित हो उठता था।

विजयवाड़ा से गुंटूर केवल 32 किलोमीटर है। पहले छोटी लाइन की गाड़ी जाती थी, अब बड़ी लाइन जाती है तथा कृष्णा नदी पर पुल बन जाने से बसों का निर्बाध आवागमन होता रहता है। यही नहीं, तेनाली होकर उसे मद्रास से मिला दिया गया है तथा सरकार एक्सप्रेस (मद्रास-काकीनाडा) गुंटूर होकर मद्रास जाने लगी है। इन तेरह वर्षों में मेरे देखते-देखते गुंटूर स्टेशन और शहर की कायापलट हो गई है। यह सब खाई और पी जाने वाली तंबाकू की माया है जिसकी गुंटूर जिले में 60 प्रतिशत खेती होती है। एक-एक एकड़ से पचास हजार रुपये तक मिल जाया करते थे। मध्य आंध्र में श्रीवैभव इसी तंबाकू की वजह से डोलता फिरता है।

रात को एक बजे गाड़ी गुंटूर पहुँची। रात स्टेशन पर काटी। सबेरे सामान क्लाक रूम (Clock Room) में डाला और चौतरा मुहल्ला के लिए रिक्शा किया। चौतरा पहुँचने पर देसु सत्यनारायण

को पूछता फिरा, पर पता नहीं लगा पाया। थोड़ी घबड़ाहट होने लगी। पता तो लगाकर ही रहूँगा भले ही चाहे जितनी तेलुगु सुननी पड़े। जब निश्चय दृढ़ हो गया तो भगवान भी पसीजे और एक सज्जन ऐसे मिले जो राष्ट्रीय सेवक संघ की प्रातःकालीन परेड में भाग लेकर आ रहे थे। कुछ सोचकर मैंने उनसे पूछा। वे थोड़ी हिन्दी भी जानते थे और देसुजी से परिचित थे। मैं भी कभी राष्ट्रीय सेवक संघ की प्रातःकालीन परेड में भाग लिया करता था। इसी सूक्ष्म परिचय के कारण वे हम पर मेहरबान हो गए और साथ देसुजी के घर पहुँच गए।

अभी परेशानी ने पीछा नहीं छोड़ा था। देसुजी के घर पहुँच कर पता चला कि वे गुंटूर से पचास किलोमीटर दूर चिलकलूरिपेट गाँव के एक हाई स्कूल में हिंदी अध्यापक होकर चले गए हैं। यहाँ उनके परिवार के अन्य व्यक्ति रहते हैं। वे पति-पत्नी अकलबधी गाँव में किसी मकान में रहते हैं। मैं हताश होकर वहीं बैठ गया। अब क्या करूँ ?

पता बताने वाले सज्जन अभी साथ ही थे। मुझपर तरस आया। मेरी परेशानी कुछ-कुछ समझ गए। मुझसे बोले—आप तो मेरे गुरु-भाई समान हैं। मेरे घर चलिए। नहा-धोकर निपट लीजिए। फिर मैं आपको चिलकलूरिपेट की बस में पहुँचा दूंगा। ड्राइवर और कंडक्टर को आपसे परिचित करा दूंगा, ताकि गाँव में आपको भटकना न पड़े और आप सही पते पर शीघ्र पहुँच जायँ।

मैं संतुष्ट मन उनके साथ हो लिया। जल्दी ही नित्यकर्म से छुट्टी पाई। हमारे बंधु नहा-धोकर नाश्ते के लिए मेरा इंतजार कर रहे थे। मैं तो 'मान न मान मैं तेरा मेहमान' था, पर उन्होंने

बड़े प्रेम से मुझ अपरचित का समुचित आतिथ्य किया। यही नहीं, नाश्ते के बाद वे कष्ट करके मेरे साथ चिलकलूरिपेट जाने वाली बस तक छोड़ने भी आए। ड्राइवर के पास वाली सीट पर मुझे बैठा दिया और उन दोनों को मेरे बारे में बता भी दिया। ड्राइवर देसुजी को जानता था। उसने मुझे दिलासा दिया और कहा—घबड़ाओ नहीं। आराम से बैठो। मैं मास्टर जी के घर तक आराम से छोड़ आऊँगा। तब मन को शान्ति मिली।

दस बजे तक चिलकलूरिपेट गाँव पहुँच गए। रास्ते में कई संपन्न गाँव पड़े। एक 'उन्नव' गाँव भी पड़ा। शायद उन्नव राजगोपाल, कृष्णाय्या गारू यहीं के रहने वाले होंगे, क्योंकि आँध्र में गाँव या शहर का नाम सबसे पहले लेते हैं। चारों तरफ मीलों तक धान और तम्बाकू की हरियाली फैली थी, जो नेत्ररंजक लगी।

मैं ड्राइवर के पास वाली सीट पर बैठा था। जब चिलकलूरिपेट गाँव की ओर बस मुड़ी तब ड्राइवर ने बस रोककर मुझसे कहा—यह सामने वाली सड़क पर चले जाइए। थोड़ी दूर पर हाई स्कूल है। दस बज चुका है और हिंदी मास्टर अब घर पर नहीं मिलेगा। तुम्हारा स्कूल जाना ही ठीक है।

मै उसे धन्यवाद देकर उतर पड़ा। हाई स्कूल खोजने में कोई परेशानी नहीं हुई। सीधा प्रधानाध्यापक के पास गया और अंग्रेजी में कहा—"मैं देसु सत्यनारायण–हिंदी अध्यापक–से मिलना चाहता हूँ।"

उन्होंने मुझे कोई एजेंट समझा और विनम्रतापूर्वक कहा—अभी वह आए नहीं हैं, आते ही होंगे। आप तब तक स्टाफ रूम में तशरीफ रखिए।"

चपरासी मुझे स्टाफ रूम में बैठा गया। दसेक मिनट बाद एक

श्यामवर्ण दुबला-पतला युवक कमरे में घुसा। प्रश्नवाचक दृष्टि से मेरी ओर देखता हुआ बोला—"मैं देसु सत्यनारायण हूँ। और आप?"

मंद मुस्कान भरे स्वर में उत्तर दिया—"पहिचानिए, मैं कौन हो सकता हूँ?"

देसुजी इस उत्तर से चकराए, बोले—"मैं पहचान नहीं सका।"

मन की प्रसन्नता दबाते हुए मैंने उत्तर दिया—"मैं लखनऊ से आ रहा हूँ। मैं तेजनारायण टंडन हूँ।"

हर्ष-विभोर होकर देसुजी मुझसे लिपट गए और भावविह्वल स्वर में बोले—"तुम? अरे आप? आप तेजनारायण टंडन? इतनी दूर लखनऊ से? कोई चिट्ठी-पत्री भी नहीं?" और मुझे फिर हृदय से लिपटा लिया।

दो भाइयों का मिलन हो रहा था। उत्तर और दक्षिण मिल रहे थे, गंगा और गोदावरी का मिलन हो रहा था। उत्तर प्रदेश और आँध्र प्रदेश का मिलन हो रहा था। दो छोटे परन्तु उत्साही हिंदी प्रेमियों का मिलन हो रहा था। सामने बैठे सहयोगी अध्यापक-गण चकित! यह कैसा मिलन है भाई! वह कैसे समझते कि यह कैसा मिलन है! हिंदी पढ़ते-समझते तो जानते, यह कैसा मिलन है। वर्षों पहले राम और सुग्रीव की मित्रता यहीं कहीं हुई थी। पर वे तो महान थे। आज फिर दो छोटे किन्तु उत्साही व्यक्तियों का मिलन हो रहा था।

मैंने उत्तर दिया—"चिट्ठी-पत्री नहीं डाली, उसी की तो सजा भुगत रहा हूँ। सवेरे से तुम्हें खोज रहा हूँ। रात एक बजे गुंटूर आया था। सवेरे किसी प्रकार तुम्हारे घर चौतरा पहुँचा तो पता चला कि तुम यहाँ गाँव में हो। तुरन्त भागता हुआ यहाँ आया हूँ।

यहाँ के घर का पता मालूम नहीं था। यहाँ स्कूल में आसानी से मिल जाओगे, अतः यहाँ आ गया।"

व्यस्त-व्याकुल होकर देसु बोले—"अरे, अभी तो तुमने कुछ नाश्ता वगैरह नहीं किया होगा। ठहरो, अभी एक मिनट में आया। यह कहकर पुनः प्रधानाध्यापक के कमरे की ओर भागे और छुट्टी लेकर मुझे अपने घर लाए। घर छोटा था, पर था आधुनिक सुख-सुविधाओं से भरपूर। गाँव होने पर भी वहाँ बिजली थी, रेडियो था, पंखा था, शादी में मिला हुआ बड़ा पलग भी एक ओर बिछा था। अभी तो उनके घर में पति-पत्नी दो ही प्राणी थे। मजे में गुजरती थी।

पसीने से तर-बतर था। फिर से नहाया, कपड़े बदले। मेरे कपड़े धोकर सूखने के लिए डाल दिए गए। मैंने देसुजी के कपड़े पहने। देसुजी की पत्नी ने अस्वस्थता के कारण खाना नहीं बनाया था। अतः देसुजी मुझे एक होटल में ले गए—"बोलो, क्या खाओगे ?"

"क्या खाऊँ ? कल तो किसी प्रकार चाय में डबलरोटी भिगो-भिगो कर ली थी और पेट को झुठला लिया था। वहाँ मिलने वाला साँभर-भात देखकर जी मिचला जाता था, खाने की कौन कहे। (पहली बार सभी को ऐसा लगता है।)"

मुझे एक उपाय सूझा—"चावल तो है ही। दूध मिलेगा ? शक्कर तो मिलेगी ? बस, फिर काम बन गया। तीनों को मिलाकर खीर जैसी बनाए लेता हूँ।" ऐसा ही किया गया और खूब तृप्त होकर मैने भोजन पाया। देसुजी सामने वाली सीट पर बैठे मुझे निहार रहे थे और मन ही मन चकित हो रहे थे। ओफ, इतनी शक्कर टंडन जी खा जाते हैं ? उफ, इनका जी नहीं मिचलाता ?

"हाँ भई, नहीं मिचलाता। तुम भी तो जब प्याले पर प्याले काफी चाय पी जाते हो, तब तुम्हारा भी तो जी नहीं मिचलाता ! यह सब संस्कार परिस्थिति और वातावरण की बात है। तुम उसमें खुश, मैं इसमें खुश।"

सारा दिन देसुजी मुझे हाथोहाथ लिए रहे। अपना प्रेस दिखाया, प्रकाशन दिखाए। काम की बातें भी हुईं। आगे के लिए योजना भी बनी।

"एकला चलो रे, अकेले ही तो चलना है। आगे चलना है। भई, अब जाने दो, आगे जाना है। गुँटूर जाने वाली बस पर बैठा दो। मुस्कान के साथ उधर से उत्तर मिलता है—"बैठाना क्या ? मैं भी तो साथ चलूँगा। गुंटूर तक ही क्यों, विजयवाड़ा तक छोड़ने चलूँगा। हाय ! तुम इतनी दूर से यहाँ आए, हमको धन्य बनाया और मैं तुम्हें केवल बस तक छोड़ने जाऊँ ? हुँह, क्या करूँ ! पराई नौकरी है, अभी छुट्टियाँ हो चुकी हैं; अब छुट्टी नहीं मिल सकेगी नहीं तो तुम्हें अकेला न छोड़ता। नीचे जहाँ-जहाँ तुम जाते, साथ चलता; तुम्हें कोई तकलीफ न होने देता, पर मजबूरी है। आज ही प्रिंसिपल छुट्टी देते समय आँखे तरेर रहा था। पर रात तो अपनी है। कल सवेरे तक तो आ ही जाऊँगा आओ चलें।"

चिलकलूरिपेट से गुँटूर बाजार में घूमें-फिरे यहाँ देसुजी ने बादाम का शरबत पिलाया—बादाम की खीर। बहुत बढ़िया लगा। आठ आने का गिलास मिला। एक से तृप्ति नहीं हुई। दूसरा गिलास भी पी लिया। आज 'दोसा' भी खाया। यह भी अच्छा लगा। हमारे यहाँ मूँग की या उर्द की दाल के चिल्ले जैसा था।

उन दिनों भी गुंटूर का बाजार वैभव-सम्पन्न था (आजकल तो

कहना ही क्या है !) जिस शरबत की दुकान पर बैठकर बादाम-खीर पी थी उसमें शीशे बड़े मोहक और बहुमूल्य थे। उनको इस ढंग से सेट किया गया था कि आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ तथा ऊपर सैकड़ों तेजनारायण टंडन शरबत पीते हुए दिखाई दिए। बड़ी अद्भुत चीज थी। यह कला आंध्र में ही पहली बार देखी। दुकानदार से पूछने पर पता चला कि इस छोटी-सी दुकान पर इस प्रकार की सजावट पर बीस हजार रुपए खर्च हुए हैं। उत्तर भारत में कदाचित कहीं भी ऐसी सजी हुई दुकान नहीं मिलेगी (अब मिल जाती हैं)। आंध्र वाले पैसा पैदा करते हैं तो उसे खर्च करना भी जानते हैं। चारों तरफ श्री संपदा का सुरुचिपूर्ण प्रदर्शन ! कोई अशिष्टता नहीं, कोई फूहड़पन नहीं। श्यामवर्ण हैं तो क्या हुआ, हम गोरी चमड़ी-वालों से बहुत अच्छे हैं। उनका मन तो काला नहीं है।

विजयवाड़ा आ गए और गाड़ी में बैठ भी गए। इतने समय तक देसुजी ने मेरा एक पैसा भी खर्च नहीं होने दिया। यहाँ तक कि तिरुपति का टिकट भी अपने पास से खरीदा। देसुजी धनी नहीं हैं, पर उनका दिल बड़ा है। इस दरियादिली से उन्होंने मेरा मन जीत लिया। तब से न जाने कितनी बार गुंटूर आया, गया देसुजी का व्यवहार सदा एक सा ही रहा। ऐसे सखी-स्वभाव इन्सान को अपना भाई बनाकर मन को बड़ी खुशी हुई।

गाड़ी चलने का समय आया, विदा की घड़ी आ गई। दोनों भाइयों की आँखों में आँसू छलक उठे—"अब कब आओगे ? कब मिलोगे ? आऊँगा, जरूर आऊँगा, पर तुम" भी तो लखनऊ आओ। हमारा लखनऊ देखो तो सही।" थोड़ी देर मान-मनौवल चलती रही। हृदय बार-बार भर आता था। पूरे टूर में एक से एक निश्छल हिंदी

प्रेमियों से मिलन हो रहा है। तेजनारायण और सत्यनारायण की यह जोड़ी २५ साल से विद्वेषियों के हृदय में ईर्ष्याग्नि भड़काती रही है। भरे हृदय से देसुजी चले गए।

दक्षिण भारत में आंध्र प्रदेश सबसे बड़ा है। यहाँ के निवासी बड़े धर्मप्राण, सरल और भावुक होते हैं। आंध्र में ही तिरुपति में भगवान वेंकटेश्वर (श्रीनिवास) विराजते हैं जो दक्षिण में ही नहीं, उत्तर में भी 'तिरुपति वालाजी' नाम से पूजे जाते हैं। आंध्र वालों की धार्मिक उदारता यहाँ खुलकर खेलती है कि यहाँ हर रोज मानों मेला-सा लगा रहता है। इसी प्रकार आंध्र में श्रीशैलम भी बहुत प्रसिद्ध मन्दिर है।

गुंटूर की सुखद स्मृति मन में सँजोकर मैं रात के डेढ़ बजे तिरुपति ईस्ट पहुँच गया। आँखें नींद से झँपी जा रही थीं। किसी प्रकार कुली के मार्गदर्शन में मैं स्टेशन के निकट देवस्थानम धर्म-शाला चला गया और रात वहीं बिताई।

पाँच बजे नींद खुल गई क्योंकि चारों तरफ चहल-पहल शुरू हो गई थी। अभी झुटपुटा था। मंदिर की बसें तिरुमलै पहाड़ पर भगवान तिरुपति बालाजी के मंदिर के लिए चलना आरंभ हो गई थीं, तिरुपति की एक विशेषता है कि वहाँ हर दिन त्योहार है, क्योंकि कभी भीड़ किसी समय भी दस हजार से कम नहीं होती। पर्व-त्योहारों पर होने वाली भीड़ की कल्पना भी कठिन है।

तिरुपति बालाजी का दक्षिण में बड़ा महत्व है। भारत के कोने-कोने से यात्रियों की भीड़ टूटी पड़ती है। मुझे भी दर्शनों की अभिलाषा थी—नीलम अपना असर दिखा रहा था। आज दर्शन भी कर लेना चाहता था और शहर में काम करके आगे भी बढ़ना

था—अभी बहुत तैरना था, रुकने का काम नहीं। चलते चलो रे भाई।

बालाजी उत्तर में अपने इसी नाम से प्रसिद्ध हैं जबकि दक्षिण में भगवान श्रीनिवास, श्रीवेंकटेश्वर अथवा श्रीवेंकटेरमणा नाम से भी पुकारते हैं (दक्षिण में लक्ष्मी जी को वेंकट कहते हैं)। बीस किलोमीटर के घेरे में फैला हुआ पहाड़ शेषाचल कहलाता है। बीच में भगवान का भव्य मंदिर है जहाँ दिन-रात वसंत अपनी छटा दिखाता रहता है। मुझे यहां का ढंग बहुत पसंद आया। किसी पंडे की जरूरत नहीं। फ्री दर्शन करने हैं तो झट जाकर लाइन में खड़े हो जाइए। यह लाइन कभी भी किसी समय भी एक हजार से कम नहीं होती। मैं आठ नौ बार भगवान के दर्शन करने तिरुपति उतरा पर सदैव ऐसी भीड़ पाई और कभी भी दो घंटे से पहले दर्शन नहीं मिल सके।

भीड़ तो अवश्य है, पर सब पंक्तिबद्ध। पंक्तियाँ बनाये रखने के लिए लोहे का जालीनुमा गलियारा रहता है जिसमें एक आदमी से अधिक खड़ा हो ही नहीं सकता। उद्देश्य यही है कि सबको समान भाव से शीघ्रता से दर्शन मिलें। हमारे आगे कोई अकिंचन भिखारी-सा खड़ा है पर भगवान की दृष्टि में सब समान हैं। उसे भी पहले आने के कारण पहले दर्शन करने का अधिकार है और इस अधिकार की रक्षा वहाँ दृढ़ता से की जाती है। इसी से वहाँ अन्य धर्मस्थानों में होने वाला धक्कम-धक्का नहीं है।

भगवान जहाँ विराजते हैं वहाँ चमकदार बिजली की अपूर्व छटा फैली मिलती है। सारा गर्भगृह किरणपुंजों से आलोकित रहता है। भगवान की भव्य आदमकद मूर्ति हृदय में अनायास भक्ति उत्पन्न कर
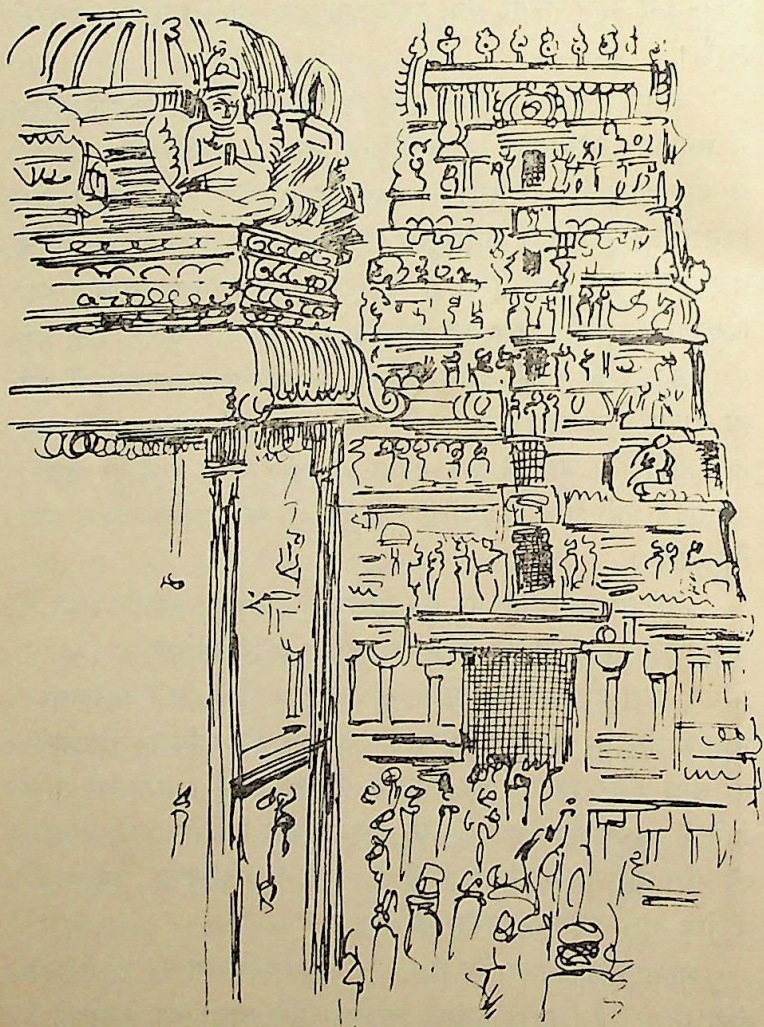
तिरुपति बालाजी का प्रसिद्ध मंदिर

देती है। काले पत्थर की बहुत चमत्कारी प्रतिमा है यह। लाखों लोग यहाँ मनौतियाँ मानते हैं जो पूरी अवश्य होती हैं। इसी कारण रोजाना लाखों रुपया चढ़ावे में यहाँ चढ़ता है। हुंडी नाम से दाईं ओर रखी रहती है। सभी यात्री सिर से भी ऊँचा हाथ करके उसमें यथासाध्य कुछ न कुछ डालते हैं। एक बार एक श्रद्धालु भक्त अपनी मनो कामना पूरी होने पर एक लाख रुपये का दान कर गया था। इसी कारण मन्दिर की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होती जाती है।

इस चढ़ावे का सदुपयोग किया जाता है। इसी रकम से तिरुपति शहर का सुप्रबन्ध किया जाता है। यात्रियों को अनेक प्रकार से सुख-सुविधाएँ पहुँचाई जाती है। पिछले तीन-चार वर्षों से छोटी लाइन को बड़ी लाइन में बदल दिया, यानी अब रेनीगुंटा न उतर कर सीधे तिरुपति ईस्ट स्टेशन आ सकते हैं जिसमें समय की काफी बचत हो जाती है। यात्रियों को ठहरने के लिए विशाल और स्वच्छ धर्मशालाएँ मिलती हैं जहाँ सभी यात्रियों को तुरन्त और अवश्यमेव स्थान मिलता है। सामान सुरक्षित रखने के लिए मुफ्त अमानती घर भी हैं। पहाड़ पर जाने के लिए मजबूत और आराम-देह बसों का बहुत बड़ी संख्या में प्रबन्ध है जो पाँच बजे सवेरे से रात को आठ बजे तक पन्द्रह घण्टे तक निरन्तर चढ़ा-उतरा करती हैं ताकि यात्रियों का बहुमूल्य समय नष्ट न हो।

विद्या के क्षेत्र में तो देव स्थान मन्दिर कमेटी ने अद्भुत प्रगति की है। प्राच्य कलाशाला, प्राच्य परिशोधालय, अनेक संस्कृत पाठ-शालाएँ तथा श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय सफलतापूर्वक मन्दिर के धन से चल रहे हैं। हिन्दी के राष्ट्र-भाषा बनते ही वहाँ हिन्दी

विभाग भी खोला गया जहाँ हमारे मित्र डा० एस० टी० नर सिंहाचारी अध्यक्ष हैं।

विश्वविद्यालय की वैभव संपन्नता का एक उदाहरण डा० साहब ने मुझे बताया यहाँ संस्कृत विभाग में उन दिनों 12 प्रध्यापक थे, जिनमें एक प्रोफेसर तथा बाकी ग्यारहों रीडर। प्रोफेसर को 1200/- तथा रीडर को 900/- वेतन मिलता था। प्रवक्ता एक भी न था। एक समय ऐसा आया कि पढ़ने वाला विद्यार्थी एक भी नहीं, क्योंकि संस्कृत बोर्ड अपने नियमानुसार प्रवेशार्थियों की बड़ी कड़ी परीक्षा लेता था। और उसमें उत्तीर्ण हो जाने वाले को प्रवेश देता था। संयोगवश उस वर्ष किसी को भी प्रवेश नहीं मिला। विभाग में बारह विद्वान प्राध्यापक अकेले बैठे समय व्यतीत करते थे।

पर खाली रहने की भी कोई सीमा होती है। उकताकर वे सब एक दिन उपकुलपति के पास गए और कहा—"आप किसी भी विद्यार्थी को प्रवेश नहीं देते तो बताइए हम लोग क्या करें ?"

उपकुलपति ने शान्तिपूर्वक उनकी बातें सुनीं और गंभीर होकर बोले—"आप सबको अपना वेतन तो पूरा मिल जाता है ?"

"जी हाँ।"

"समय पर पहली तारीख को मिल जाता है ?"

"जी हाँ।"

"पूरा वेतन मिलने में एक दिन की भी देरी तो नहीं होती तो फिर आप सब की क्या शिकायत है ?"

"जी, शिकायत यह है कि जब आप किसी को भी भरती नहीं करते तो क्या हम लोग किस को पढ़ावें ? क्या करें ?"

"जी, आप पढ़ाइए नहीं, खुद पढ़िये। इतना बड़ा संस्कृत पुस्तकालय है। वहाँ जाइए, पढ़िए, शोध कीजिए।"

अध्यक्ष ने निरुत्तर होते हुए कहा—पर हमारे पढ़ने अथवा शोध करने से विश्वविद्यालय को क्या लाभ होगा ? तब विश्वविद्यालय हमें पढ़ने के लिए क्यों वेतन देगा ?"

शान्त स्वर में उपकुलपति ने उत्तर दिया—"आप पढ़ेंगे कोई नया शोध करेंगे तो विश्वविद्यालय का नाम होगा। आप खाली रहते हैं केवल इस कारण संस्कृत बोर्ड अपने प्रवेश के नियम उदार नहीं कर सकता। नियम अनुशासन भी कोई चीज है।

सब अपना-सा मुँह लेकर लौट आए। ऐसे विश्वविद्यालय की श्रीसंपन्नता का सहज ही में अनुमान किया जा सकता है।

शिक्षा में आंध्र वाले पीछे नहीं हैं। वहां तो एक कहावत प्रसिद्ध है कि हर 30 किलोमीटर के बाद एक अच्छा मन्दिर मिलेगा तो एक जूनियर कालेज भी मिलेगा। प्राइमरी और माध्यमिक पाठ-शालाएँ तो हर गाँव हर तालुके में हैं। यहाँ राष्ट्र-भाषा हिन्दी का भी अच्छा प्रचार है। हिन्दी को सभी बड़ी रुचि से पढ़ते हैं क्योंकि राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के आदेशों और सुझावों को प्रत्येक ने अपने जीवन में उतारा है। अतः घर-घर में खादी, हैंडलूम तथा हिन्दी का अबाध प्रवेश है।

आंध्र वालों का प्रिय भोजन चावल-सांभर (अरहर की पतली दाल) तथा नाश्ते में इडली, दोसा, वड़ा है। चाय-काफी का तो घर-घर में प्रवेश है। गरीब से गरीब आंध्रवासी सबेरे नाश्ते में दो एक वड़ा और दिन भर में चार-पाँच बार चाय या काफी पिएगा। इडली या दोसा तो उत्तर भारत में भी मिलने लगा है पर यहाँ का

तो जायका ही दूसरा है। स्वादिष्ट भी और कम खर्चीला भी।

अब मेरी गाड़ी मैसूर की तरफ बढ़ रही है। आंध्र को छोड़ कर अब कर्नाटक प्रदेश में प्रवेश कर रहा हूँ।

महिमा मण्डित कर्नाटक प्रदेश में

नीलम की कृपा से एक से एक अच्छे और समृद्ध नगर देखने को मिल रहे हैं। तिरुपति से मैं मैसूर पहुँच गया। इतिहासप्रसिद्ध मैसूर! हिन्दू-धर्म और संस्कृति का रखवाला मैसूर!! टीपू सुल्तान का राजदुलारा मैसूर!!!

आह! टीपू की याद ने मुझे उठाकर कहाँ पटक दिया! यह बादशाह मुसलमान जरूर था, पर हिन्दुओं का हितैषी और उनकी धर्म-संस्कृति का कट्टर समर्थक था। काश! यह अंग्रेजों से न हारता तो हिन्दुस्तान का नक्शा कुछ दूसरा ही होता। पर भारत का दुर्भाग्य! होनी होकर ही रहती है।

हाँ, होनी होकर ही रहती है। मैसूर की स्टेट छत्रम (धर्मशाला) में एक सज्जन ने बड़ी रोचक कहानी टीपू सुल्तान के सम्बन्ध में सुनाई। यह तो इतिहास प्रसिद्ध तथ्य है कि टीपू सुल्तान हिंदू-धर्म को भी श्रद्धा से देखता था और श्रीरंगपट्टनम में उसने श्री रंग जी का विशाल मन्दिर बनवाया था हिंदू-मुसलमान में वह कोई भेदभाव नहीं रखता था, और वह योग्य व्यक्ति को उचित पद देता था—चाहे वह किसी भी धर्म का मानने वाला हो। तभी तो उसके शासनकाल में मैसूर साम्राज्य अँग्रेजों के लिए ईर्ष्या का विषय बन गया था।

उसकी ख्याति सुनकर वाराणसी का एक ज्योतिषी उससे मिलने

मैसूर का शेर टीपू सुल्तान

राजदरबार में पहुंचा और उसका हाथ देखकर भविष्य पढ़ने की इच्छा प्रकट की। टीपू सुल्तान प्रजावत्सल था, उसके दरबार में बड़े-छोटे का कोई भेद-भाव न था। यद्यपि टीपू ज्योतिष को ढकोसला समझता था, फिर भी अतिथि का मन रखने के लिए उसके सामने अपना दाहिना हाथ बढ़ा दिया। पंडित महाराज ने बड़े गौर से उसका हाथ देखा और बिना कुछ कहे ठंडी साँस लेकर बाहर जाने लगे।

टीपू सुल्तान को यह देखकर कौतूहल हुआ और उसने ब्राह्मण को रोककर पूछा—"क्यों महाराज ! तुम मेरा हाथ देखकर उदास क्यों हो गए ? बड़ी ठंडी साँस ली है तुमने ! क्या अनिष्ट देखा मेरे हाथ में ? कुछ बताते तो जाइए।"

दुखी स्वर में ज्योतषी जी बोले—जहाँपनाह ! क्या कहूँ ? बड़ी आशा लेकर आया था। लेकिन जैसी भगवान की इच्छा ? सब कुछ समाप्त हो जायगा। कुछ भी तो नहीं बचेगा और अँग्रेजों का सितारा चमकेगा। हरि-इच्छा !

टीपू को भी बड़ा ताव आया वह विरक्त स्वर में बोला—"कुछ नहीं। सब ढकोसला है। आखिर इस बात का सबूत क्या है कि तुम जो कह रहे हो, सच ही होगा ? अपनी ज्योतिष विद्या की सच्चाई का कोई सबूत दे सकते हो ?"

ब्राह्मण देवता तमतमा गए और कड़े शब्दों में बोले "ज्योतिष विद्या उन्हीं को फलती है जो उस पर आस्था रखते हैं। खैर, मैं अपनी सच्चाई का एक सबूत देकर ही जाऊँगा। आपके मन में जो भी एक प्रश्न आवे, पूछिए।"

टीपू सुल्तान का प्यारा एक हीरामन तोता था उन्हें उससे

इतना स्नेह था कि हर समय, यहाँ तक कि, दरबार में भी उसे अपने साथ रखते थे। इस वक्त भी वह पिंजरे में बन्द उनके पास था। उनकी निगाह उस पर पड़ी। उन्होंने कुछ सोचा। तपाक से वह उठ पड़े। दाहिने हाथ में अपनी बहुमूल्य रत्नजटित तलवार सूत ली और बाएँ हाथ से लपककर अपने तोते की गर्दन पकड़ ली और चिल्लाकर बोले, बोल, "इसके भाग्य में क्या है ? क्या इसका भाग्य बता सकता है ? मेरे हाथ से यह मरेगा या नहीं ?

ज्योतिषी महाराज घबड़ाए नहीं। शांत स्वर में बोले—"हाँ, इसका भी भाग्य बता सकता हूँ। पर मैं लिखकर इस प्याले के नीचे रख कर जाता हूँ। आपको इसका जो भी करना हो, मनमानी करने के बाद तब इस पुर्जे को पढ़िएगा। मेरी बात सच न निकले तो मुझे पकड़वा मँगवाइएगा। मैं तो तब तक दरवाजे तक भी नहीं पहुँच पाऊँगा। पर मेरी बात सच निकले तो मुझे बुलवाने की जरूरत नहीं। मुझे अपनी राह जाने दीजिएगा। आपकी जय हो ! मैसूर-साम्राज्य की जय हो !!"

ब्राह्मण देवता अपनी राह चल दिए। सारा दरबार स्तब्ध था। सब साँस रोके देख रहे थे कि अब आगे क्या होगा ? टीपू सुल्तान ने क्रोध में भरकर एक बार अपने प्यारे तोते को देखा। तोता चकित था आज मेरे मालिक को क्या हो गया है ? ऐसा व्यवहार तो मेरे साथ कभी भी नहीं किया। पर बाएँ हाथ ने उसकी गर्दन कस कर पकड़ ली और दाहिने हाथ ने तलवार का भरपूर हाथ मारा।

टीपू एक अच्छा निशानेबाज था, पर पता नहीं क्या हुआ कि वार होते ही तोता फड़फड़ाया और बलपूर्वक अपनी गर्दन छुड़ाकर

उड़ गया। उसका बाल भी बाँका नहीं हो सका वार तो हो ही चुका था। अतः सुल्तान के बाएँ हाथ का अंगूठा कटकर गिर पड़ा। दरबार में हाहाकार मच गया—यह क्या हुआ ? क्यों हुआ ?

अपनी पीड़ा को दबाते हुए सुल्तान ने प्याला हटाकर कागज को पढ़ा—आप इसका बाल भी बाँका न कर सकेंगे; अलबत्ता अपनी जिद के कारण आप अपने बाएँ हाथ का अंगूठा काट बैठेंगे। जैसी प्रभु की इच्छा।

हाँ, प्रभु की इच्छा से ही आगे भी सब वही घटित हुआ। कुछ दिनों बाद ही मैसूर का शेर प्यारा टीपू सुल्तान अंग्रेजों के छल-कपट के कारण लड़ते हुए मारा गया और आगे जो भी हुआ उसे हम आप सभी जानते हैं।

मैं आज उसी मैसूर के आँगन में खड़ा यह सब सोच रहा हूँ। कितना साफ और स्वच्छ शहर है यह ! लंबी-चौड़ी सड़कें शीशे की भाँति चमक रही हैं। कहीं भी धूल मिट्टी का नाम नहीं, कहीं भी कूड़ा-कचड़ा नहीं। हैदराबाद से भी सुंदर और मोहक। सड़कों के किनारे दूधिया रंग की हाँडियों में तेज पावर के बल्ब अपूर्व शोभा देते थे। मैं दशहरे के कई दिनों बाद मैसूर पहुँचा था, अतः दशहरे का सुप्रसिद्ध दरबार खत्म हो चुका था। मुझे बताया गया कि उन दिनों मैसूर में बिजली रोशनी का खर्च एक लाख से अधिक हो जाता है।

बाद में तो मैसूर अनेक बार गया। दशहरा भी देखा और डा० एम० राजेश्वरैया जी का सहयोग पाकर दरबारी बनकर दशहरा दरबार की शोभा भी देखी।

मैसूर की दर्शनीय इमारतों में सेंट फिलोमिना चर्च बहुत भव्य

है। इसके भीतर जाकर नास्तिक भी श्रद्धाभिभूत हो जाता है। श्री रंगपट्टण में नवाबी इमारतें रोमांचित कर देती हैं। यहाँ पवित्र

मैसूर की दरबारी वेश-भूषा में लेखक

कावेरी नदी का संगम भी है यानी दो तरफ से कावेरी आकर यहाँ एक हो जाती है। श्री रंगजी का मंदिर भी काफी विशाल है।

मैसूर के राजमहल, ललिता महल, प्रसूति अस्पताल, टेक्निकल

इंस्टीट्यूट, रेलवे कार्यालय देखने के बाद हम मार्केट के पास चौक पर आ गए। यहाँ संगमरमर के विशाल चबूतरे पर छतरी के भीतर अंतिम मैसूर राजा के दादा का आदमकद बुत है।
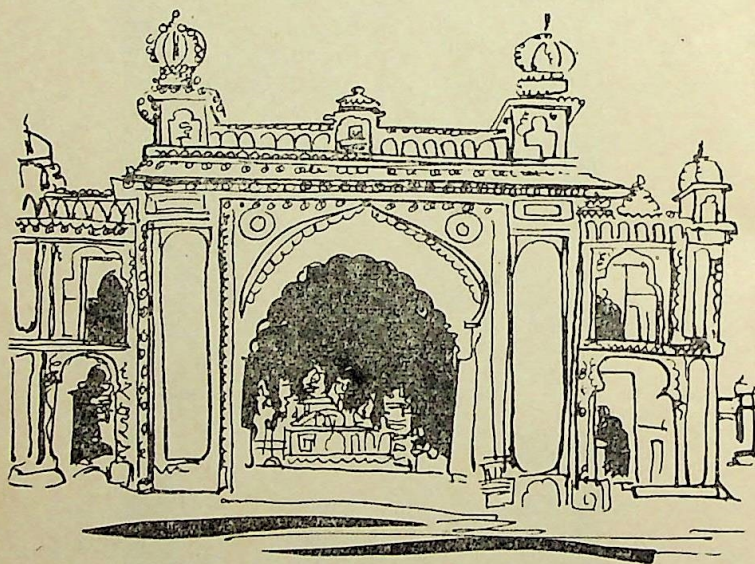
मैसूर का राजमहल

पास ही में छोटी पहाड़ी पर भगवती चामुंडा का प्राचीन मंदिर है। यहीं पर महाराजा का ग्रीष्मकालीन महल भी है जिसे बाहर से ही देखकर और अनुमान लगाकर संतोष करना पड़ा। पहाड़ी पर ही एक विशाल एवं भव्य नंदी की मूर्ति है। नंदी की मूर्ति करीब सोलह फुट की है। इसके गले में पत्थर की पुष्प मालाएँ तथा घंटियाँ सुशोभित हैं। यह मूर्ति एक ही विशाल पत्थर से तराशकर बनाई गई है।
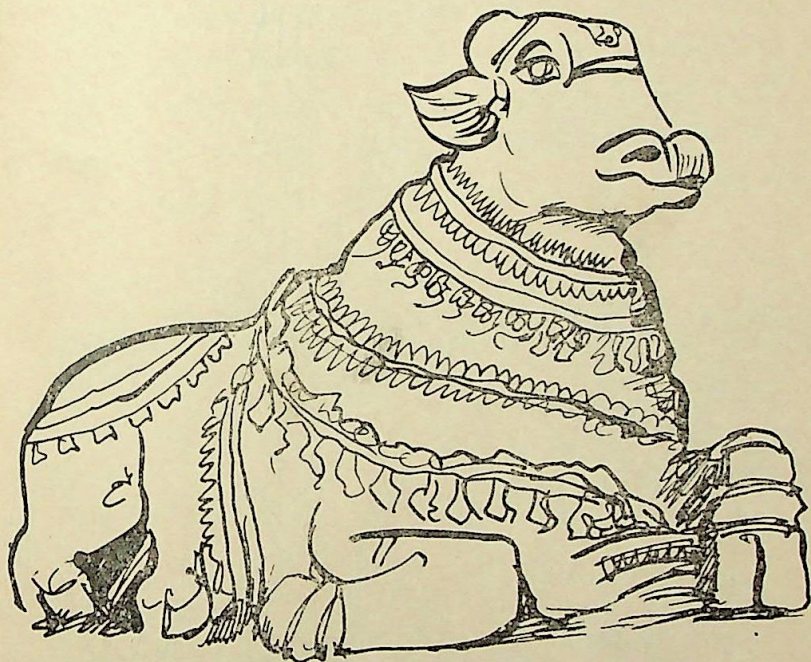
विशाल नंदी महाराज

दशहरा मैसूर का राष्ट्रीय त्योहार है जो सदियों से धूमधाम से मनाया जाता है। कन्नड़भाषी मैसूर वाले इसे विजयादशमी के दिन धूमधाम से मनाते हैं। पूरे मैसूर शहर में जगमगाती रोशनी की जाती है और महाराज की सवारी बहुत आडंबर के साथ निकाली जाती है। राजमहल बिजली की भरपूर रोशनी से खिल उठता है। राजदरबार सजाया जाता है। दरबारियों और उत्तम नागरिकों को पुरस्कार दिए जाते हैं।

महाराज की सवारी

मैसूर की अन्य दर्शनीय इमारतों में जगनमोहन पैलेस तथा जिंदा अजायब घर हैं जगनमोहन पैलेस में अनुपम कला की प्रसिद्ध कृतियों का संग्रह है। हमारी मैसूर की सैर अधूरी ही रह जाती यदि हम मैसूर से ही २३ किलोमीटर उत्तर में भारत-प्रसिद्ध वृन्दावन बाग जो पवित्र कावेरी में बांध बनाकर बसाया गया है सैर न करते।

इस दर्शनीय बाँध को कृष्णराज सागर कहते हैं। इसके नीचे लगा हुआ कर्नाटक का नंदन कानन (वृन्दावन बाग) है। यह बाग इतना हरा-भरा और सुन्दर है कि इसे देखकर हरेक अपने को धन्य समझने लगता है। रात के समय सारे बाग में तीन घंटे के लिए नेत्ररंजक (बिजली की) रोशनी प्रतिदिन की जाती है। इस स्वर्गीय दृश्य को
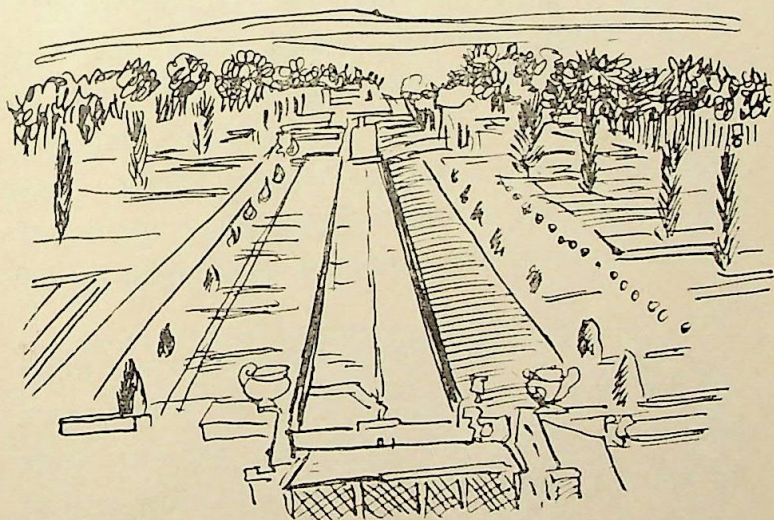
मैसूर का नंदन कानन वृन्दावन बाग

तो हर भारतवासी को देखना चाहिए। मैंने जब वृन्दावन बागी देखा तो मन नाच-नाच उठा। भगवान ने महाराजा को अपार संपदा दी है तो उसे शुभ कार्यों में खर्च की सुबुद्धि भी दी है। उन्हीं के कारण आज मैसूर-मैसूर बन गया है। आज कर्नाटक को मैसूर और बेंगलूर पर गर्व है।

मैसूर में बांबे मील्स (Bombay Meals) के नाम से उत्तर

भारतीय भोजन मिलता है। कई दिनों के बाद मैंने तृप्त होकर भोजन किया। मैसूर से सब प्रकार से संतुष्ट होकर मैंने बेंगलूर के लिए प्रस्थान किया।

बेंगलूर को मैसूर का बड़ा भाई समझ लीजिए। सुंदर भी, विशाल भी और व्यस्त भी। इसीलिए जब राज्यों का पुनर्गठन हुआ और कर्नाटक प्रांत बना तब बेंगलूर उसकी राजधानी बनी।

आज बेंगलूर सैलानियों का स्वर्ग है। रोजाना लगभग एक हजार व्यक्ति सिर्फ सैर के लिए बेंगलूर आते हैं और संतुष्ट मन सुखद कल्पना में विभोर हो वापस जाते हैं। अत्युत्तम विधान सौध, उलसूर लेक, लालबाग, कब्बन पार्क, टीपू का राजमहल, विशाल नंदी का मंदिर और सजा-संवरा फैशनेबुल बाजार महात्मा गाँधी रोड और कार्मशियल स्ट्रीट सैलानियों के मन को आसीम सुख देती हैं।

बेंगलूर से पचास किलोमीटर दूर नंदी हिल्स, भी बहुत मनोहर और पिकनिक के लिए अच्छा स्थान है। बेंगलूर से मैसूर, श्रवण बेलगोला तथा हलेबीडु आदि इतिहासप्रसिद्ध स्थानों को बराबर बसें जाती हैं। इसीसे मैं जोर देकर कहता हूँ कि दक्षिण भारत की यात्रा बेंगलूर घूमें बिना अधूरी ही रहेगी, जिसने बेंगलूर नहीं देखा उसने दक्षिण भारत में कुछ भी नहीं देखा। बेंगलूर का सिटी रेलवे स्टेशन यात्रियों को पुलकित कर देता है।

बेंगलूर के राजधानी बनते ही इस शहर का चतुर्दिक विकास होने लगा। बेंगलूर, बम्बई, कलकत्ता की भाँति विविध भाषा-भाषी शहर है पर आबादी में बम्बई से आधा न होने पर भी स्वस्थ और समशीतोष्ण जलवायु के कारण, उससे बढ़—चढ़कर है। बम्बई में

गर्मी में पानी के लिए हाहाकार मच जाता है पर बेंगलूर में यह बात नहीं। पानी सदैव भरपूर मिलता है और जब से कावेरी का निर्मल जल बेंगलूर में आने लगा है, बड़ा सात्विक वातावरण बन गया है।

बेंगलूर समुद्र तट से 3000 फीट ऊँचा बसा है। तथा उसके पूर्व-पश्चिम दोनों ओर 300 किलोमीटर दूर समुद्रतट है अतः यहाँ सुहावना मौसम बारहों महीने रहता है। न ज्यादा गरम और न ज्यादा ठंडा। इसी से इस राजधानी की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति हो रही है। हवाई जहाज बनाने का सरकारी कारखाना, टेलीफोन बनाने का कारखाना, घड़ी बनाने का कारखाना, हैल (HAL) कारखाना बी०ई०एल० आदि ने बेंगलूर की ख्याति बहुत बढ़ा दी है।

बेंगलूर में तो बागों की शोभा का तो कहना ही क्या! लोग लखनऊ को 'बागों का शहर' कहते हैं पर मैं मानता हूँ कि अब बेंगलूर को यह सम्मान मिलना ही चाहिए। बेंगलूर का सुप्रसिद्ध लालबाग तो अपनी सानी नहीं रखता। इसके मध्य में बने शीशे की बारादरी में ही बहुचर्चित कांग्रेस का विभाजन हुआ था। इससे यह बारादरी और लालबाग इतिहास प्रसिद्ध हो गए हैं।

समयाभाव से मैं कर्नाटक के अन्य दर्शनीय स्थल नहीं घूम सका। फिर भी पाठकों की जानकारी के लिए उनका संक्षिप्त परिचय दे रहा हूँ। बसव कल्याण, धारवाड़ और विजयनगर (हम्पी) इतिहास में अमर है। विजय नगर में पुराने खंडहरों में ध्वस्त राज महल, मंदिर दुर्ग आदि देख सकते हैं। विरूपाक्ष मंदिर, माल्यवान पर्वत, ऋष्यमूक पर्वत (जहाँ राम सुग्रीव की मित्रता हुई थी) हेमकूट

पर्वत, विट्ठल मंदिर आदि देखने योग्य है। अठारह फुट लंबी लेबोदर गणेशजी की मूर्ति भी देखने को मिलती है। चालीस किलोमीटर के घेरे में फैले विजयनगर के खंडहर नष्ट प्रायः हिंदू धर्म की दुहाई देते मालूम होते हैं। कितना वैभवशाली साम्राज्य था वह ! पद्म महल और नरसिंह भगवान की तीस फुट ऊँची मूर्ति अब भी अच्छी हालत में मिलती है।

यादवगिरि (मेलुकोटि तीर्थ), श्रृंगेरी, उडुपि, गोकर्ण आदि तीर्थ हिन्दुओं के प्रसिद्ध तीर्थ स्थान हैं। उडुपि के ब्राह्मण भारत भर में होटल खोलकर बैठे हैं। श्रवण बेलगोल जैनियों का तीर्थ
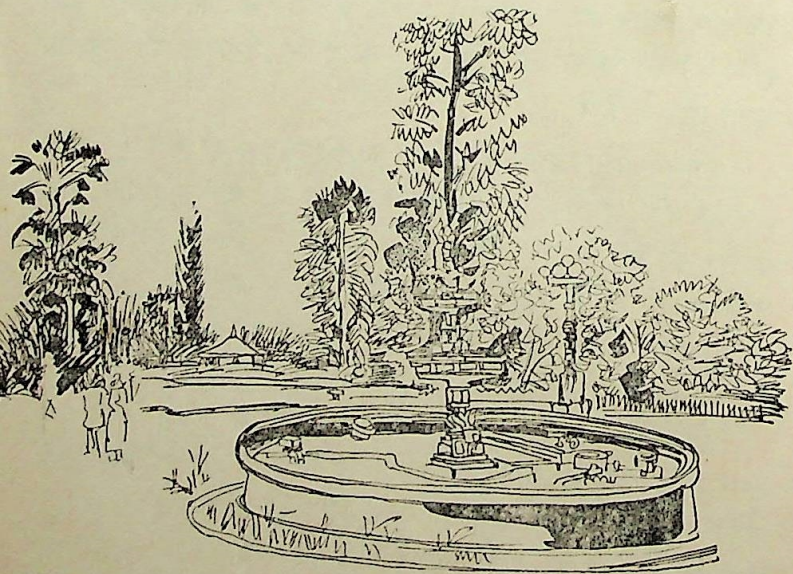
बेंगलूर का प्रसिद्ध लालबाग
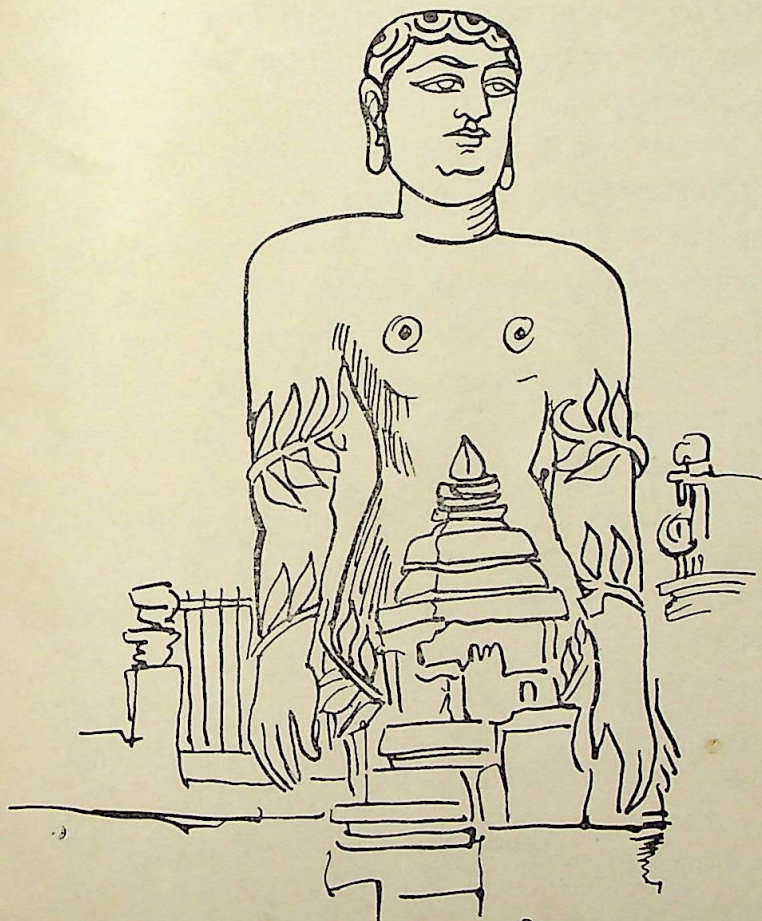
भगवान गोमटेश्वर की मानव प्रतिमा

स्थल है। यहाँ भगवान गोमटेश्वर बाहुबलि की अस्सी फुट ऊँची प्रतिमा एक छोटी पहाड़ी पर खड़ी है। वर्ष में एक बार यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है जिसमें देशभर के जैनी भक्त आते हैं। भगवान

गोमटेश्वर का मचान बनाकर घी, दूध, दही से भरपूर अभिषेक किया जाता है कि नदी सी बहने लगती है जिसे भक्तगण प्रसाद के रूप में अपने घर ले जाते हैं।

कर्नाटक राज्य में बाजपुर शहर है। कभी यहाँ मुस्लिम शासन (बहमनी सल्तनत) का बोल बोला था। आज भी उसके भग्नावशेष मिलते हैं। यहाँ का गोल गुंबद संसार के सात आश्चर्यों के समान है क्योंकि ईंट चूने गारे से बना इतना बड़ा गोल गुंबद कहीं नहीं मिलेगा। यह भी उसी शैली और ढंग पर बना है जिस भाँति लखनऊ का बड़ा इमामबाड़ा। गोलगुंबद दूसरी अश्चर्यजनक विशेषता यह है कि गुंबद के नीचे खड़े होकर आप जो भी आवाज करेंगे वह सात बार क्रम से गूंजेगी।

सोमनाथ पुर, बेलूर, हलेबीडु में हिन्दुओं के प्रसिद्ध मंदिर हैं। मंगलूर कर्नाटक का प्रसिद्ध बंदरगाह और शहर है। हंपी के पास तुंगभद्रा नदी पर प्रसिद्ध बाँध बना है। बंडीपुर नामक एक विचित्र स्थल मैसूर से ऊटी जाते वक्त रास्ते में पड़ता है। यहाँ जंगली जानवरों को स्वेच्छापूर्वक विहार करते देखा जा सकता है। हाथी या सरकारी वाहनों पर बैठाकर पर्यटकों को यह क्षेत्र दिखाया जाता है। काफी लोग यहाँ पिकनिक मनाने के लिए आते हैं।

मुसलमान भाइयों के लिए भी कर्नाटक में अनेक दर्शनीय स्थल हैं। बीजापुर के अतिरिक्त, गुलबर्गा, बीदर, हुमनाबाद, रायचूर बल्लारी आदि प्रसिद्ध हैं।

कर्नाटक की यात्रा अधूरी रह जायगी यदि हम कुर्ग और जोग प्रपात का जिक्र न करें। कुर्ग कभी एक छोटा स्वतंत्र राज्य था जो सिर्फ डेढ़ हजार वर्ग किलोमीटर के घेरे में हैं। यहाँ की आबादी भी

केवल ढाई लाख से अधिक नहीं। पर यहाँ की शस्य-श्यामला जमीन और धान के हरे, भरे खेत-घने जंगल मनोहर दृश्य उपस्थित करते हैं। यहाँ के लोग बड़े बहादुर और स्त्रियाँ सुन्दर और आकर्षक होती हैं। मरकरा यहाँ का प्रधान शहर है जो एक ऊँची पहाड़ी पर बने मजबूत किले पर स्थित है। कुर्ग से ही पवित्र कावेरी का उद्‌गम होता है अतः कुर्ग तल कावेरी के नाम से भी जाना जाता है।

शिमोगा जिले में जंबुसागर के पास जोग जल प्रपात है। यह इतना मन लुभाने वाला है कि देखते ही आँखों को शाँति मिलती है। आठ सौ फुट की ऊँचाई पर शरावती नदी की चार धाराएँ गरजती हुई नीचे कूदती हैं अतः वे रजत जल की भाँति हरेक का मन प्रसन्न कर देती हैं। इनके गिरने की ध्वनि अनोखा आनंद प्रदान करती है। चाँदनी रात में इसकी शोभा बयान नहीं की जा सकती। वह तो गूँगे के गुड़ के समान है जिसका अनुभव देखकर ही किया जा सकता है।

मैंने महसूस किया कि कन्नड़वासी स्वभाव से ही शाँत, गंभीर, सहृदय, धार्मिक और मिलनसार हैं। उनका सरल स्वभाव मुझे आज भी बहुत पसंद है। वे संगठन पर अधिक यकीन रखते हैं। अपनी भाषा और संस्कृति के वे कट्टर समर्थक हैं पर वे दूसरे की भाषा और संस्कृति से भी प्रेम करना जानते हैं, उनका भी समुचित आदर करते हैं। हिंदी से भी उन्हें उसी भाँति लगाव है। देश के प्रति प्रेम उनमें भी कम नहीं है। स्वतंत्रता की रक्षा वे जान देकर भी करते हैं।

कन्नड़वासी का भोजन भी बहुत सादा होता है। आंध्र वालों

की भाँति वही इडली, दोसा, बड़ा, काफी, चाय और साँबर भात। बेंगलूर और मैसूर आदि में उत्तर भारतीय बहुत हैं अतः उनके संसर्ग से रोटी-पूरी तथा मिठाई भी समान रूप से खाते हैं। इन दोनों महानगरों में बढ़िया मिठाइयों की काफी दुकानें हैं। ये मिठाई वाले ज्यादातर यू० पी० के खुर्जा, अलीगढ़ आदि से आये हैं और अब यहीं बस गए हैं। मेरी भाँति उन्होंने भी कर्नाटक को अपना देश मान लिया है और उन्हीं में रम गए हैं। अपने गाँव (शहर) वे अब यदा-कदा ही जाते हैं।

एक कन्नड़ महिला पूजा के लिए जाती हुई

कर्नाटक की नारियाँ भी बड़ी सरल, सीधी और पतिव्रता होती हैं। उनमें वीरता का भी आभाव नहीं। कित्तूर की रानी तो झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई से कम नहीं। अपने किले की रक्षा में उसने

भी अपने प्राण उत्सर्ग कर दिए थे। इसी प्रकार रानी चेन्नम्मा, मल्लम्मा, चाँदबीबी भी इतिहास में अपना नाम अमर कर गई हैं। कन्नड़ नारियाँ पूजा-पाठ और धर्म-कर्म में बहुत विश्वास रखती हैं और सवेरे मंदिरों में पूजा करने के लिए स्वयं अकेली ही चली जाती है। संगीत में भी उनका अच्छा-खासा दखल है। कर्नाटक संगीत तो भारत-प्रसिद्ध है। यज्ञगान की उनकी अपनी परम्परा है।

मुझे एक बात बहुत पसंद आई। यहाँ हिन्दू-मुसलमान समान रूप से हिलमिल कर रहते हैं। मुसलमान भी कर्नाटक को अपना ही देश समझते हैं और धड़ल्ले से कन्नड़ को बोलते हैं। उनकी कन्नड़ में उर्दू का पुट ज्यादा होता है जो उनकी कन्नड़ को अच्छी खूबसूरती देता है। एक चौथाई उर्दू और तीन चौथाई कन्नड़ सुनने-बोलने में बड़ी मधुर लगती है।

शिक्षा के क्षेत्र में भी कन्नड़वासी आन्ध्र से पीछे नहीं। यहाँ भी तीन—कर्नाटक, मैसूर, बेंगलूर—युनीवर्सिटी हैं। आर्टस, साइंस, कामर्स कालेज भी अच्छी संख्या में हैं। हाई स्कूल और प्राइमरी स्कूलों का जाल-सा बिछा है। आंध्र की भांति ये लोग भी हिंदी और देवनागरी को बड़े उत्साह से अपनाते हैं। हिंदी साहित्य में भी वे साहित्य रचना करने में कुशल हैं।

कन्नड़वासी कुशल प्रशासक भी हैं। प्रारंभ से ही इस प्रदेश में बहमनी सल्तनत, विजयनगर साम्राज्य और हैदरअली टीपू की शासन कुशलता ने राज्य को बहुत समृद्ध बना दिया था। फलतः आज भारत में बहुत से प्रशासक कर्नाटक के ही हैं। भारतरत्न डा० विश्वेश्वरैया से भारत का बच्चा-बच्चा परिचित है। श्री के०

हनुमंथैया ने रेलवे प्रशासन में आमूल परिवर्तन करके तहलका मचा दिया था।

वीर प्रसविनी कर्नाटक भूमि को प्रणाम करके मैं केरल में आ जाता हूँ।

सुरम्य केरल प्रदेश में

बेंगलूर से मंगलूर को बस सर्विस बहुत अच्छी है। रेल यात्रा की अपेक्षा बस यात्रा सस्ती भी पड़ती है और बारह घंटे में पहुँचा भी देती है जबकि रेल से बीस बाइस घंटे लगते हैं।

एक अचंभे की बात और बताऊँ। भारत के नक्शे पर दृष्टि डालिए तो देखिएगा कि मद्रास, बेंगलूर और मंगलूर तीनों बड़े शहर एक सीध ही में हैं। यदि किसी चमत्कारवश मद्रास से पश्चिम को ओर एक सीधी रेल लाइन बना दी जाय जो मद्रास से बेंगलूर और बेंगलूर से मंगलूर तक जावे तो तीनों की दूरी बहुत ही कम हो सकती है। पर यह तो असंभव-सा दीखता है।

वैसे मंगलूर भी बहुत जल्दी तरक्की करता जा रहा है। नया बन्दरगाह बन चुका है। मंगलूर में पग-पग पर वैभव के दर्शन होते हैं।

मंगलूर से कसारागोड पहुँचते ही सुरम्य केरल प्रदेश शुरू होने लगा। बहुत जल्दी ही हम कन्नानोर आ गए। यह उत्तरी केरल का प्रसिद्ध नगर है।

कसारा गोड में ही मैंने एक अच्छी बात देखी। रेल की पटरी के दोनों ओर थोड़ी-थोड़ी दूर पर बने कच्चे-पक्के घरों की कतारें इस तरह चलती रहती हैं कि यह तय नहीं किया जा सकता कि कौन से गाँव की सीमा कहाँ खत्म हुई और दूसरी कहाँ से शुरू हुई, ऐसा

मालूम होता है कि सारा प्रदेश ही एक बहुत बड़ा गाँव है और ये सब मकान उसी की सीमा में हैं।

रेल लाइन तलश्शेरी (टेल्लीचेरी) तक किनारे-किनारे ऐसी गई है कि कहीं-कहीं तो समुद्र रेल पटरी से पचास-साठ मीटर ही रह जाता है। मेरे ऐसे यात्री को जिसने समुद्र को केवल पुस्तकों में ही पढ़ा है, रेल के डिब्बे से यह दृश्य काफी आनंदित और रोमांचित करता है।

तलश्शेरी वैसे तो एक छोटा शहर है पर भारत प्रसिद्ध है। बहुत कम लोगों को मालूम होगा कि भारत के जितने भी सरकस हैं वे सब यहीं के हैं। यह प्रदेश पहले मलबार कहलाता था। यहाँ का जीवन इतना संघर्षमय है कि छोटे-छोटे बच्चे शुरू से ही कला बाजियाँ खाने लगते हैं। यहाँ के भयानक जंगलों में सभी वन्य पशु मिलते हैं जिनसे उन्हें दिन-रात निपटना पड़ता है। इन मलबारी युवक युवतियों की फुर्ती और चुस्ती देखते ही बनती है। सरकस (Circus) के कारनामों ने तलश्शेरी को अमर कर दिया है।

शीघ्र ही हमारी गाड़ी कालीकट आ गई। यह इतिहास प्रसिद्ध नगर है और हैदराबाद की भाँति पुरातन नगरी भी। पुर्तगालियों के लिए भारत का प्रवेश द्वार था। काश ! आपसी फूट ने उनको यहाँ पैर जमाने का अवसर न दिया होता तो आज भारत की कहानी कुछ दूसरी ही होती। पर हमारे-आपके सोचने से होता भी क्या है ? 'होता वही है जो मंजूरे खुदा होता है।'

कालीकट को मलयालम में कोझीकोडे कहते हैं। कोझीकोडे का हिंदी उच्चारण 'कोलीकोडै' होता होगा तभी तो विदेशियों ने उसे कालीकट बना दिया। मेरे साथ भी कोझीकोडे, ने एक बार

अच्छा मजाक किया था। मुझे यहाँ एक पार्सल भेजना था। मैंने लखनऊ में रेल वालों से पूछताछ की। उन्होंने कहा कि इस नाम का कोई स्टेशन उनकी सूची में नहीं है। मेरा आश्चर्य बढ़ता जाता था कि टिकट पर डाकखाने की जो मोहर छपी है उससे 'कोझीकोडे साफ-साफ पढ़ा जाता है। अंग्रेजी और हिन्दी दोनों में साफ-साफ छपा है। अचंभे की बात तो यह है कि डाकखाने वालों को भी नहीं मालूम कि 'कोझीकोडे' कहाँ है और भारत के किस प्रदेश में है, पर यह निश्चित था कि भारत में कहीं यह है जरूर। आज की इस यात्रा में कोझीकोडे (कालीकट) का रहस्य मिला तो मुझे भी उतनी खुशी हुई जितनी वास्कोडिगामा को कालीकट पहुँचने पर हुई होगी। कालीकट में अब युनीवर्सिटी भी खुल गई है। हमारे आदरणीय मित्र डा० मलिक मुहम्मद हिंदी विभागाध्यक्ष हैं। आपकी विद्वत्ता भारत प्रसिद्ध है।

कालीकट से शोरानूर जंक्शन होते हुए हम त्रिश्शूर (त्रिचूर) आ गए। यह केरल का महान सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यक और राजनैतिक नगर है। यहाँ का 'पुरम' उत्सव बहुत प्रसिद्ध है। इसमें राजघराने के इकतीस हाथी सोने के आभूषणों से सजे हुए शोभा यात्रा में निकलते हैं। इस शहर की सबसे बड़ी विशेषता नगर के हृदय में बसा हुआ स्वराज्य राउंड है। यह गोलाकार बाग चार सौ एकड़ वर्गमील में फैला हुआ है। यहीं राजनैतिक, साहित्यिक, धार्मिक सभा व्याख्यान आदि होते रहते हैं। बाग के बीचोबीच बहुत प्रसिद्ध मंदिर वटकुमनाथ का है।

त्रिश्शूर से लगभग १५ किलोमीटर दूर 'गुरुवायूरप्पन' नामक केरल का सुप्रसिद्ध हिंदू मंदिर है। इस मंदिर की ख्याति सारे भारत

में है। मैं जिन दिनों गुरुवायूर मंदिर दर्शन करने गया था उस समय वहाँ शादियों का मौसम था। केरलवासी मंदिर में शादी करना-कराना बहुत शुभ और पवित्र मानते हैं। आपको आश्चर्य होगा कि मेरे सामने उस दिन एक घंटे में लगभग १० शादियाँ हुईं यानी एक मिनट में एक शादी ! सादगी की हद है !!

जी हाँ, सादगी की हद है। सवा रुपए में टिकट लेकर वर-वधू वालों ने मंदिर के रजिस्टर में नाम पते लिखवाए। उसके बाद वे सब मंदिर के आँगन में आ गए। बहुत बड़ा दीपक बीचो-बीच में जल रहा है। दीपक भगवान गुरुवायूर (कृष्ण भगवान) की मूर्ति के बिल्कुल सामने था। कन्या मूर्ति की तरफ मुख करके खड़ी हुई। वर उसके सामने खड़ा हुआ। कन्या ने वर को जयमाला पहना दी। वर ने भी उसके बाद वधू को वरमाला पहना दी। उसके बाद वर ने बधू का हाथ धीरे से पकड़कर अँगूठी पहना दी और थोड़ा झुक कर उसके गले में मंगलसूत्र पहना दिया। अंगूठी और मंगलसूत्र से वर की आर्थिक स्थिति का पता चल जाता है। यदि वर सम्पन्न हुआ तो अंगूठी भारी और मंगलसूत्र जड़ाऊ होगा। साधारण हुआ तो मंगलसूत्र (छोटा-सा) काले पर मजबूत डोरे में पिरोया हुआ।

इसके बाद वर-वधू दोनों एक साथ भगवान की मूर्ति की ओर मुख कर सामने खड़े हुए। प्रणाम किया और दीपक के सात फेरे गठबन्धन के साथ लगाए। भगवान को पुनः प्रणाम किया। काम खत्म, हटो और अब दूसरे को आने दो। इसके बाद दोनों पति-पत्नी अपने-अपने संबंधियों के साथ मंदिर की पूरी परिक्रमा करते हैं। उसके बाद पास के होटल में प्रीति भोज के लिए चले जाते हैं। लीजिए शादी हो गई। इसके बाद वे अपने गाँव जाकर अपनी-

अपनी सामर्थ्यानुसार उत्सव मनाते हैं, खाना-पीना करते हैं। चलिए हो गई शादी। कोई आडंबर नहीं, कोई दिखावा नहीं, कोई भी फिजूल खर्च नहीं।

यहाँ त्रिश्शूर में कोई बत्तीस किलोमीटर की दूरी पर चेरुतुरुत्ति नामक गाँव है। इसकी विशेषता यही है कि यहाँ "केरल कला मंडलम्" है यह कथकलि नृत्य का प्रसिद्ध संस्थान है।

कथकलि के संबंध में शुरू से बताना अच्छा होगा, कथकलि का अर्थ है कथा (कहानी) को नाच-गाकर कहना और पब्लिक का मनोरंजन करना अतः कथकलि का केरल में बड़ा प्रचलन है। स्वयं विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर (जो कला के जाने-माने मर्मज्ञ थे) ने कथकलि की प्रशंसा करते हुए कहा था—"कथकलि एक ऐसा नृत्य है जिसकी टेकनीक किसी कला में नहीं मिलती। यह एक अत्युत्तम कला है जो सदियों की साधना-उपासना के बाद आज इस निखरे रूप में मिल रही है। कथा के रूप में होने में इससे मनो-रंजन भी होता है और ज्ञानवर्धन भी।"

वस्तुतः आज कथकलि केरल का प्रतीक, पर्याय बन गया है। जो भी घुमक्कड़ चाहे वह देशी हो या विदेशी वह कथकलि को अवश्य देखना पसंद करता है। मैंने भी कई बार कथकलि को देखा और आनंद प्राप्त किया है। उनके विचित्र मुखौटे, अत्युत्तम भाव्य व्यंजना मन को रोमांचित कर देती है।

कथकलि इतना दिलचस्प और प्रभावशाली होता है कि देखने वाला उसी में रम जाता है। बाहरी दुनियाँ को वह भूल सा जाता है। एक बार महाभारत का प्रसंग चल रहा था। कृष्ण पांडवों के दूत बनकर दुर्योधन के दरबार में जाते हैं और दोनों में सुलह

कराने की चेष्टा करते हैं, पर ढीठ दुर्योधन है कि अपनी जिद पर अड़ा है, कि कुछ भी नहीं दूंगा। भगवान कृष्ण पाँच गाँव से पाँच घर और पाँच घर से फिर एक घर पर ही आ जाते हैं कि एक घर ही दे दो, वे पाँचो एक घर में ही रह लेंगे। पर जिद्दी दुर्योधन चिल्लाकर कहता है—नहीं।

दर्शक देख रहे हैं कि भगवान कृष्ण पांडवों के लिए सिर्फ एक घर के लिए दुर्योधन के सामने गिड़गिड़ा रहे हैं। केरल वासी गुरुवायूर के रूप में कृष्ण को पूजते हैं। बड़ा मान देते हैं। सहसा एक वृद्ध धनी जमींदार तपाक से उठा और लपक कर दुर्योधन की छाती में लात मार कर गिरा दिया और बोला—यदि यह दुष्ट नहीं देगा तो मैं दूंगा पाँच घर !

नृत्य की एक विद्या और है—तुल्लल। यह कथकलि से थोड़ा भिन्न है। इसमें केवल एक ही नट होता है। वही गाना भी गाता है और वही हाव भाव भी बताता है। तुल्लल की विशेषता यह है कि इसकी भाषा बहुत सरल और चटपटी हास्य का पुट लिए होती है। अतः कथकलि बड़े लोगों और पढ़े-लिखे लोगों को आनंद देता है, तो तुल्लल साधारण ग्रामीणों का मनोरंजन करता है।

इसी से मिलता-जुलता स्त्रियों का तमाशा है—'तुंपितुल्लल'। तुंपि का अर्थ है—शलभ; तुल्लल का अर्थ नाच, खेल है। एक स्त्री तुंपि बनकर किसी घने वृक्ष के नीचे बैठ जाती है और सुपारी के फूलों के गुच्छे से अपना मुंह ढक लेती है। उसकी २५-३० सहेलियाँ उसे केन्द्र बनाकर गोलाकर नृत्य करती है और एक प्रसिद्ध लोक-गीत ताल दे-देकर गाती हैं। तुंपि बनी स्त्री धीरे-धीरे आगे बढ़ती जाती है और जोर-जोर से अपना सिर हिलाती जाती है जैसे

झूम रही हो। तालियों की गति बहुत तेज हो जाती है तो 'तुंपि' का झूमना इतना ज्यादा तेज हो जाता है कि वह अपनी सुध-बुध खोकर जमीन पर सिर पटकने लगती है और बेहोश हो जाती है। तब सखियाँ नृत्य बन्द कर पानी डाल कर उसे होश में लाती हैं।

केरल में दो त्योहार बहुत प्रसिद्ध हैं (१) ओनम (२) विशु ओनम की कथा पौराणिक है। किसी समय वहाँ राक्षसराज बलि राज करते थे। उनके राज में प्रजा सब प्रकार से सुखी थी। राजा बलि ने पृथ्वी, आकाश, पाताल—तीनों लोकों को जीत कर अपने अधिकार में कर लिया। अब तो देवताओं का राजा इंद्र बड़ा घबड़ाया। उसने जाकर विष्णु भगवान की दुहाई बोली कि हमें बचाइए।

इंद्र की स्तुति से प्रसन्न होकर विष्णु जी 'बावन अंगुलगात' वाले ब्राह्मण कुमार के रूप में राजा बलि के दरबार में आए। इतने छोटे शरीर के महातेजस्वी ब्राह्मण-कुमार को देखकर सारा दरबार चकित रह गया। उनके अपरिचित तेज से सहमा-सा बलि सिंहासन से उतर कर उनके चरणों पर गिर पड़ा और प्रार्थना की— महाराज ! कोई सेवा ?

"मैं तपस्या करना चाहता हूँ राजन् ! कहीं भी तीन पग जमीन दे सकें तो बड़ी कृपा होगी।"

"अभी लीजिए भगवन !" कहकर राजा बलि ने संकल्प करने के लिए कमण्डलु से जल निकालना चाहा। इसी बीच में उनके गुरु शुक्राचार्य जी, जो बड़े गौर से उस ब्राह्मण कुमार को देख रहे थे, सारी बात समझ गए। उन्होंने राजा बलि को मना करना चाहा कि मूर्ख सावधान हो जा। यह छलिया विष्णु भेष बदल कर तुम्हें

ठगने आया है। पर राजा बलि ने कुछ न सुनी और संकल्प कर ही दिया।

राजा बलि का संकल्प करना था कि उस 'बावन अंगुल गात' वाले ने अपना शरीर इतना बढ़ाया, इतना बढ़ाया कि तीनों लोक दो पग में नाप लिए। अब तीसरा पग कहाँ रखूँ ? तब राजा बलि ने अपना सिर झुका दिया। तीसरा पग मेरे सिर पर रख दीजिए। बामन देवता ने तीसरा पग उसके सिर पर रख कर उसे पाताल जाकर बंधे रहने की आज्ञा दी।

जाते-जाते राजा बलि ने वर माँगा आपकी आज्ञा मानकर मैं नीचे जा रहा हूँ पर मुझे साल में सिर्फ एक बार अपनी प्यारी प्रजा का हाल-चाल पूछने आने की इजाजत दें।

बामन ने वर स्वीकार कर लिया और तब से हर वर्ष श्रावण मास के श्रवण नक्षत्र के दिन राजा बलि एक दिन के लिए केरल आया करते हैं और अपनी प्यारी प्रजा की खुशहाली और शांति को देखते हैं। केरल वासी उस दिन बड़े उत्साह से अपने प्यारे महाराजा के स्वागत में दिल खोल कर तैयारी करते हैं और प्रयत्न करते हैं कि उस दिन कोई भी दुःखी न रहे ताकि महाराज को निराशा न हो।

केरल का दूसरा बड़ा त्यौहार "विशु" है जो अप्रैल महीने में पड़ता है। यह माना जाता है कि "विशु" के दिन सबेरे सबसे पहले जिस चीज पर निगाह पड़ेगी उसका प्रभाव साल भर तक रहेगा। अगर अच्छी वस्तुओं पर निगाह पड़ेगी तो पूरा साल शुभ बीतेगा अच्छा रहेगा। अतः पिछली रात को सुन्दर वस्तुएँ सजाकर रखते हैं ताकि साल भर शुभ बीते।

त्रिशूर से आगे चलने पर अंगमाली स्टेशन आया। यहाँ से कालटी के लिए बसें मिलती हैं जहाँ जगदगुरु शंकराचार्य ने जन्म लिया था। इस केरल-सपूत ने अपने जमाने में सारे भारत में झंडे गाड़ दिए थे।

आलवाय एक औद्योगिक नगर है। इसके अलावा यहाँ पेरियार नदी बहती है जिसका पानी बड़ा मीठा होता है और एर्नाकुलम (कोच्चीन) को सप्लाई होता है। यहां से तीन मील दूर पर कलमश्शेरी में कोच्चीन विश्वविद्यालय का यूनीवर्सिटी सेन्टर नई बिल्डिग में बहुत सजधज के साथ खुल गया है। यहाँ हमारे आदरणीय मित्र डा० विश्वनाथ अय्यर हिन्दी विभागाध्यक्ष हैं और बड़ी कुशलता से उत्तर-दक्षिण का समन्वय करने में लगे हैं।

अब मुझे केरल के दूसरे प्रसिद्ध नगर एर्नाकुलम (कोच्चीन) के दर्शन हुए। यहाँ का बन्दरगाह दक्षिण का एकमात्र प्राकृतिक बंदरगाह है। इसी कारण प्राचीन काल से यहाँ के जहाज चीन, अरब, फारस आदि देशों को आते-जाते थे।

एर्नाकुलम और कोच्चीन के बीच में (१२ किलो मीटर के मध्य में) वेलिंगटन द्वीप (Island) है। यह मानवनिर्मित (Artificial) है। यहीं के द्वीप में हवाई अड्डा है और कई बड़े और ऊँचे होटल यहीं पर हैं।

कोच्चीन रियासत की राजधानी कोच्चीन रही। पहले यहाँ पुर्तगालियों ने किला बनवाया था जो बाद में डच लोगों के हाथ में चला गया। बाद में इस पर अँग्रेजों का अधिकार हो गया।

हम शुरू में ही बता चुके हैं कि ईसाईयों का सबसे पुराना चर्च सेंट फ्रांसिस चर्च यहीं है। जब यह पुर्तगालियों के अधिकार में था

तब वास्कोडिगामा को यहीं दफनाया गया। दूसरे महत्व का है— सांताक्रुज कैथेड्रल। यहाँ यूरोपीय चित्रकारों द्वारा बनाए गए अनेक भित्ति चित्र हैं। किले के दक्षिणी भाग में यहूदियों का अति प्राचीन धर्म मन्दिर (सिनगाग) है। यह बहुत सुन्दर है। नीली और सफेद चीनी टाइलों से इसका फर्श बना है।

कोच्चीन फोर्ट का निर्माण पुर्तगालियों ने किया था और बाद में कोच्चीन नरेश को भेंट कर दिया था। उसके बाद यह डचों के अधिकार में आया और उन्होंने ही इसको नया बनाया तब से यह डच महल के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें रामायण से संबंधित भित्ति-चित्र भी हैं।

कोच्चीन का राजघराना एर्नाकुलम से पाँच किलोमीटर दूर त्रिपूनिथुरा में रहता है। यहाँ से पचीस किलोमीटर दूर वैकोम में केरल का सुप्रसिद्ध शिव मन्दिर है जहाँ के अष्टमी उत्सव में लाखों हिन्दू एकत्रित होते हैं।

अब हम कोट्टायम आ गए। इसे केरल की मसूरी शिमला समझिए। एक छोटी सी पहाड़ी पर स्थित यह सुन्दर नगर केरल का हृदय है। व्यापारिक नगर होने के कारण बहुत जल्दी इसकी उन्नति हुई है। पहली बार जब कोट्टायम गया था और आज का कोट्टायम देखता हूँ तो इसकी चतुर्दिक उन्नति देखकर आश्चर्य होता है।

केरल में ईसाई धर्म का बहुत जोर है और उसमें भी सबसे अधिक संख्या कोट्टायम में है। ईसाई ५२ प्रतिशत हैं—ऐसा मेरी समझ में आया। ईसाई मिश्नरियों ने भारत को जो अच्छाइयाँ दी हैं उनमें शिक्षा का प्रचार बहुत महत्व रखता है। इस सम्बन्ध

में हमें इनका कृतज्ञ होना ही चाहिए। कोट्टायम में और पूरे केरल में इन्होंने बहुत से बड़े-बड़े कालेज खोले हैं। यों कहना चाहिए कि चालीस प्रतिशत शिक्षा का प्रबंध इन्हीं लोगों के हाथ में है। पर प्रभुता पाकर मदमत्त हो जाने से इनके संबंध में जनमत की धारणा बदलती जा रही है। अति तो हमेशा बुरी रही है। इनसे भी अति बहुत हुई और कम्पटीशन से हिन्दू कालेज भी कई जगह खोले गए हैं जिनमें—चेंगनाश्शेरी का हिन्दू कालेज बहुत प्रभावशाली है। त्रिशूर का श्री केरल वर्मा कालेज भी अपने अच्छे प्रबंध और उच्च शिक्षा के लिए प्रसिद्ध है।

कोट्टायम में ही केरल की सुप्रसिद्ध प्रकाशन-संस्था साहित्य प्रवर्तक सहकारी संघ है। इसका सारा प्रबंध केरल के लेखकों के हाथ में है। यह अपने लेखकों को पच्चीस से चालीस प्रतिशत तक रायल्टी देता है। यह दर विश्व भर में सबसे अधिक है। इसका अपना बिक्री केंद्र नेशनल बुक स्टाल है जिसकी शाखाएँ केरल भर में हैं।

अब हम चेंगनाश्शेरी, तिरुवल्ला, मावेल्लिकरा होते हुए कोल्लम आ जाते हैं। यह भी प्राचीन शहर है और इसकी आबादी भी अच्छी है। अँग्रेजों ने इसे 'क्विलन' पुकारना शुरू किया। कोच्चीन की भाँति कोल्लम भी व्यापारिक बन्दरगाह है। यहाँ सबसे ज्यादा काजू निर्यात होता है। इसी कारण यह प्रमुख व्यापारी केंद्र बन गया है।

इसके अलावा कोल्लम शिक्षा का बहुत बड़ा केन्द्र भी है। यहाँ का श्री नारायण कालेज केरल भर में प्रसिद्ध है। यह कालेज १९४८ में केरल के आदरणीय श्रीनारायण गुरु के नाम पर स्था-

पित किया गया था। (श्री नारायण गुरु ने दलित वर्ग के उत्थान के लिए बड़ा संघर्ष किया था इसलिए आम जनता उन्हें बहुत मानती है।) इस कालेज का प्रबंध "श्री नारायण ट्रस्ट" करती है। यहाँ विभिन्न विषयों में लगभग २५०० छात्र शिक्षा पाते हैं। तिमंजिली इमारत वाले बहुत मजबूत बने इस कालेज को एक अच्छा खासा विश्वविद्यालय कह सकते हैं। यहाँ हमें अपने आदरणीय मित्र हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० एन० आई० नारायणन् से मिलना था जो अपने मिलनसार स्वभाव के कारण सारे कालेज में प्रसिद्ध हैं।

यहाँ मैं केरल की एक विशेषता और बताऊँगा। केरल बहुत छोटा प्रदेश है और आबादी बेहिसाब बढ़ती जाती है। केरल के स्त्री पुरुष बड़े अध्यवसायी हैं। कठिनाइयों में रह कर कैसे जिया जाता है, कोई इनसे सीखे। ज्यों-ज्यों आबादी बढ़ती गई, जगह अपने आप निकालते गए। अब स्थिति यह है कि केरल में एक इंच जमीन भी बेकार नहीं। आबादी के साथ आवागमन भी बहुत बढ़ गया। नई रेल लाइनें बनने में बहुत कठिनाइयाँ थीं। केरल की बस सर्विस बहुत उत्तम है फिर भी भीड़ घटने का नाम नहीं लेती। सरकारी और गैर-सरकारी बसें दिन-रात मुसाफिर ढोती हैं पर समस्या हल नहीं होती।

समस्या हल करने का दूसरा उपाय खोज लिया गया। केरल पश्चिमी ओर से अरब सागर से घिरा हुआ है। केरल में भी बहुत सी नदियाँ हैं। कोल्लम में अरबसागर शहर के भीतर तक आ गया है। ऐसा ही एर्नाकुलम में है। इन दोनों को मिलाकर एक बड़ी नहर बना दी गई। इसी को "बैंक वाटर" (Bank water) कहते

हैं यह नहर इतनी गहरी और चौड़ी है कि पाल से चलने वाली चार-पाँच बड़ी नौकाएँ एक साथ बखूबी चल सकती हैं। इस नहर के किनारे कई औद्योगिक नगर (जैसे आलेप्पी, कोट्टायम आदि) बसे हुए हैं। ये नावें सामान के साथ मुसाफिर भी ढोती हैं। बस के मुकाबिले में यह एक अच्छा, सस्ता और सुलभ यातायात साधन है। इसलिये कोट्टायम, कोल्लम, आलेप्पी आदि बहुत व्यस्त बन्दरगाह बनाए। कोट्टायम से मैं चार-पाँच बार आलेप्पी गया और दो-तीन बार आलेप्पी से एर्नाकुलम। सस्ती होने के अलावा यह यात्रा बहुत आराम देह और सुखद है। ओणम (Onam) केरल का बहुत बड़ा राष्ट्रीय त्योहार है जिनमें उन्हीं नहरों में नौका-दौड़ होती है। इस उत्सव पर केरल की छटा देखने योग्य होती है। नौका-चालन में मलबारी युवकों का हस्त लाघव मन को मोह लेता है।

आलेप्पी में नहरों का तो जाल बिछा है। केरल की सबसे बड़ी झील वेंपनाड यहीं पर मिलती है। बक वाटर को इस झील से जोड़ देने के कारण आलेप्पी एक छोटा बन्दरगाह होने पर भी बहुत व्यस्त रहता है। आलेप्पी इसी कारण 'पूर्व का वेनिस' माना जाता है। है भी यह वनिस की भाँति मनोहर। यहाँ नारियल का व्यापार होता है। क्वायर (Coir) के कई बड़े कारखाने यहाँ हैं।

कोल्लम से लिए तिरुवंपुरम (Trivandrum) की ओर बढ़ने पर वर्कला पड़ता है। स्टेशन से तीन किलो मीटर दूर समुद्र तट पर प्राचीन मन्दिर है। यह भगवान जनार्दन का मन्दिर है। मंदिर छतरी के समान गोल बना हुआ है और बहुत सुन्दर लगता है। दर्शन करके मनुष्य धन्य हो जाता है। इस मन्दिर का सारा खर्च केरल सरकार उठाती है। मन्दिर का प्रबंध भी बहुत अच्छा है।

यहाँ सुगन्धित धूप की एक खदान है। इस कारण धूप बराबर में मिलती है और सस्ती भी है। यह बहुत रम्य स्थल है। महाप्रभु वल्लभाचार्य की गद्दी भी यहीं है। इसे दक्षिणी गया भी कहा जाता है। केरल के प्रसिद्ध सन्त श्री नारायण गुरु की समाधि पास में ही है। केरल में कई सोते हैं जिनसे धातुमिश्रित जल निकलता है।

चार-पाँच स्टेशन पार करने के बाद केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम आ गई और इस प्रकार लखनऊ से निकले हुए मुझ युवक ने भारत के आखिरी स्टेशन त्रिवेन्द्रम के दर्शन कर ही लिए।

तिरुवनंतपुरम (त्रिवेन्द्रम) भाषावार राज्य की राजधानी है। जब भाषावार प्रांत बने तो त्रावनकोर और कोच्चीन दोनों राज्य मिलकर (United States of Travancore and Cochin) एक हो गए। उन दिनों पत्रों में तथा डाकखाने की मोहरों में (जो टिकट पर छापी जाती हैं) U. S. T. C. छपकर आता था। मेरे मन में उत्सुकता होती थी कि यह क्या बला है? उत्तर भारत में कोई भी इस बात को नहीं बता सका। त्रिवेन्द्रम आने पर रहस्य का पता स्वतः लग गया। फिर बाद में तो इसका नाम केरल हो गया। 'केर' का अर्थ है—केला नारियल और उनकी बहुत अधिक पैदावार होने के कारण यह केरल कहलाता है। प्राकृतिक सुषमा में यह काशमीर के समकक्ष है।

त्रिवेन्द्रम में भगवान अनन्त रायनम (पद्मनाभ स्वामी) का सुन्दर और विशाल मन्दिर है जो ऊँचे और रम्य स्थान पर बना है। मन्दिर बहुत सुन्दर और आधुनिक व्यवस्था से पूर्ण है। इसका

मुख्य द्वार, जिसे गोपुरम कहते हैं, शिला पत्थर से बना है और सतमंजिला है। गोपुरम की हर शिला पर कोई न कोई सुन्दर मूर्ति गढ़ी हुई मिलेगी। मन्दिर के अन्दर गर्भगृह में भगवान विष्णु (श्री पद्मनाभ) की काफी बड़ी मूर्ति है। मूर्ति बढ़िया काले पत्थर (शालिग्राम पत्थर) से बनी है।

भगवान विष्णु शेषशायी हैं। वे अपनी शय्या पर योगनिद्रा का आनन्द ले रहे हैं। भगवान विष्णु के दर्शन करके सभी को बड़ी शांति मिलती है। भगवान इतने लम्बे लेटे हैं कि एक दरवाजे से विष्णु जी का मुख देख सकते हैं, बीच के दरवाजे से नाभि। नाभि-कमल से ब्रह्माजी प्रकट होकर वेद पाठ कर रहे हैं। तीसरे दरवाजे से चरण के दर्शन होते हैं। शेषशायी विष्णु की मूर्ति तो दक्षिण के प्रायः सभी मन्दिरों में मिलती है, पर यहाँ की मूर्ति बहुत विशाल और नयनाभिराम है।

यहाँ पर एक हजार व्यक्तियों के बैठने वाला मंडप है। यहाँ नियमित रूप से संस्कृत का पठन-पाठन चलता है। जब मैंने दर्शन किए थे तब २५–३० वेदपाठी ब्राह्मण सस्वर पाठ कर रहे थे। एक बात और- इस मंडप के खम्भों में पत्थर के महीन तारों को झंकृत करें तो सात स्वर निकलेंगे। धन्य हो केरल। हम लोगों के लिए कितनी दुर्लभ अनन्त विभूतियाँ तुम्हारे पास हैं।

मन्दिर की व्यवस्था का भार राज्य के अधिकार में होने से पूजनादि भली प्रकार होते हैं। राजा स्वयं प्रातःकाल एक घण्टे तक मन्दिर में पूजा करते हैं। उस समय किसी का प्रवेश मन्दिर में नहीं हो पाता। राजा अपने को श्री पद्मनाभ दास कहते हैं क्योंकि ट्रावनकोर के राजा मार्तण्ड वर्मा जी ने अपना राज्य श्री पद्मनाभ जी

को समर्पित कर दिया था और भरत की भाँति उनके सेवक बन कर राज काज चलाते थे। तब से यह परम्परा चली आ रही है।

यहाँ केरल के मन्दिरों में प्रवेश के लिए एक आवश्यक बात बताना है। पुरुष यहाँ केवल लुंगी या धोती पहन कर ही भीतर जा सकते हैं, यानी शरीर पर बनियान या कमीज कुछ भी नहीं। ऊपर का हिस्सा, नंगा स्त्रियाँ चाहे जैसे जा सकती हैं पर शलवार या पाजामा में नहीं। मेरे सामने एक किस्सा हुआ। एक सूटेड-बूटेड देसी साहब दर्शन करने जाना चाहते थे। पर उनके पास धोती या लुंगी कुछ भी नहीं। पहरेदार उनको किसी भी प्रकार भीतर नहीं जाने दे रहा था। वे बड़े तैश में आए, लाल पीले हुए, पर सब बेकार। अन्त में हारकर वे पास वाले बाजार में गए। एक लुंगी खरीदी, उसे पहना तब भीतर जाने पाए। उनका यह तमाशा देखने को सैकड़ों की भीड़ जमा हो गई पर उनसे किसी को भी हमदर्दी न थी। एक जले दिल वाला बोल ही पड़ा—"अँग्रेज चले गए, औलाद छोड़ गए।"

मन्दिर से सटा हुआ ही पुराना राजमहल है। यहीं पहले तिरुवितांकुर के राजघराने के लोग रहा करते थे (अब तो वे दूर शहर में आधुनिक शैली में बने महल में रहते हैं)। यह एक प्रकार से खाली-सा है, पर विजया दशमी के दिनों में यहाँ विशाल संगीत सभा लगती है।

महल की दीवार पर एक विशेष घड़ी लगी है जिसे 'मुसलमान घड़ी' कहते हैं। घड़ी पर तीन मूर्तियाँ हैं—एक मुसलमान और दोनों ओर दो बकरे। जब घंटा बजने का समय होता है तब दोनों

बकरे पीछे हट कर और फिर आगे बढ़कर मुसलमान के गालों पर टक्कर देते हैं। घण्टा बजता है और बेचारे मुसलमान का मुँह खुल जाता है जो घण्टा पूरा होते ही बन्द हो जाता है और दोनों बकरे पुनः वापस जाकर अपनी जगह पर स्थिर हो जाते हैं। ऐसी ही चमत्कारिक घड़ी हैदराबाद में सालारजंग म्यूजियम में हैं। बस फर्क यह है कि उसमें केवल ४ बजने के ५ सेकेण्ड पहले घड़ी का दरवाजा खुलता है—एक बुढ्ढ़ा हाथ में हथौड़ा लिए निकलता है जोर से ४ बार घण्टे बजाता है फिर खटाक से भीतर हो जाता है और दरवाजा बन्द हो जाता है। बस फिर वही पुरानी टिक-टिक-टिक।

मन्दिर के उत्तरी छोर पर बहुत बड़ा तालाब है जिसे पद्म-तीर्थ कहते हैं। पश्चिमी दरवाजे से एक रास्ता निकलकर समुद्रतट को जाता है। इसका जितना प्यारा नाम शंखुमुखम है उतना ही विशाल और सुन्दर समुद्रतट है। शाम को यहाँ रोजाना (रविवार और छुटी के दिनों में और भी ज्यादा) बड़ी भीड़ एकत्र होकर समुद्र सेवन करती है। यहाँ के चमकीले रेत से थोरियम, मोनो-साइट और इलयनाइट आदि बहुमूल्य वस्तुएँ निकाली जाती हैं। यही रेत उत्तर भारत में गहने साफ करने के लिए भी भेजी जाती है, ऐसा हमें लखनऊ के कई जौहरियों ने बताया। यह रेत वहाँ काफी मँहगी बिकती है।

मन्दिर चारों ओर से किले से घिरा हुआ है जिसे कोठी कहते हैं। फोर्ट से दक्षिण की ओर तेरह किलोमीटर जाने पर कोवलम नामक समुद्रतट आता है। सुन्दरता में विश्व में श्रेष्ठतम समुद्रतट कहा जाता है। यहाँ की सुन्दरता का कारण है समुद्र के ऊपर

लटकी हुई काली-काली चट्टानें और सघन नारियल कुंज। चारों तरफ सुखद छाया। समुद्र कभी शान्त और कभी कुपित होकर अपना सिर धुनता हुआ। चारों तरफ बेदिंग सूट में सजे विदेशी सैलानी।

किले के पूर्वी फाटक से हम नगर के सुन्दरतर बाजार पुथेन-चन्ताई में पहुँच जाते हैं। इस बाजार के दोनों ओर दूर तक प्रसिद्ध इमारतें हैं। यूनीवर्सिटी भी इसी सड़क पर है। सचिवालय भवन बहुत सादा किन्तु भव्य है। आँगन में केरल वीर वेलुतुंपी की प्रतिमा है। सड़क पर केरल के लोकप्रिय दीवान सर टी॰ माधव राव की मूर्ति खड़ी है। इन दोनों के कारण इस स्थान को 'स्टेच्यू' बोलते हैं।

संक्षेप में त्रिवेन्द्रम शहर बहुत सुन्दर और बड़ा है। सदियों से राजधानी होने के कारण यहाँ बड़े-बड़े मकान और खूब सजी चटक-मटक वाली दुकानें हैं। हमारे मित्र की पुस्तकों की दुकान भी मुख्य बाजार में थी। आज भी मुझे उनसे मेरे व्यापार में प्रमुख सहयोग मिलता रहता है। इसे भी मैं नीलम का चमत्कार मानता हूँ। कहाँ लखनऊ और कहाँ त्रिवेन्द्रम! मेरे ऊपर भी वह कहा-वत लागू होती है—जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ!

हाँ, गहरे पानी पैठने पर ही मुझे पिल्लई जैसा उत्साही और हौसले वाला व्यापारी मिला। कितनी दूर और कितने दिन भटकने पर कैसा संगम हुआ, कैसा मिलन हुआ।

आज के नवयुवक इससे भी कुछ शिक्षा ले सकते हैं। मेहनत और सूझबूझ से वे अपना जीवन बना सकते हैं। मेरी इस टूर (Tour) की जिन्दगी में मुझे कितना घूमने को मिला, कितना

कष्ट सहा । फिर भी मेरे उत्साह की कोई कमी नहीं । हमेशा उमंग और उल्लास से भरपूर और हर समय कोई भी अवसर मिलने पर बाहर चले जाने को तैयार ? यदि मैं भी किसी नौकरी के चक्कर में पड़ा होता तो कहीं हेड क्लर्क या आफिस सुप्रिटेंडेंट हो गया होता । पर नहीं । मैंने अपने पुरुषार्थ पर भरोसा किया तो आज भगवान की कृपा और अपनी मेहनत से 'कुछ' बन पाया हूँ । सौ-पचास की नौकरी ढूँढने वाले नवयुवक इससे कुछ शिक्षा लेंगे तो वे भी आगे चलकर 'कुछ' बन सकेंगे ।

पवित्र मंदिरों के आगार तमिलनाडु में

त्रिवेन्द्रम से कन्याकुमारी लगभग नब्वे किलोमीटर है । प्रसिद्ध तीर्थस्थान होने से राज्य सरकार ने बहुत मजबूत डामर-सीमेंट की पक्की सड़क बना दी है और दोनों तरफ थोड़ी-थोड़ी दूर पर लैंप पोस्ट बने हैं जिनमें अब तो ट्यूब लाइट फिट कर दिए गए हैं । सड़क के दोनों ओर नारियल, केंला, काजू, सुपारी आदि के वृक्ष होने तथा घनी बस्तियाँ होने के कारण सारा मार्ग बड़ा और निरापद है । जगह-जगह धान की खेती भी मिलती है ।

केरल वाले बहुत मेहनती हैं । उनका राज्य छोटा पर आबादी बहुत अधिक है । अतः उन्होंने एक इंच जमीन भी खाली नहीं छोड़ी है, सब आवाद किया हुआ है । सुन्दरता में केरल काश्मीर से जरा भी घटकर नहीं है । घटकर हो भी कैसे ? 'क' का ककार तो दोनों में है ।

हम शुचींद्र में उतर गए । यह कन्याकुमारी से नौ किलो-मीटर पहले पड़ता है । नागरकोविल से यह छत्तीस किलोमीटर है अतः हर पन्द्रह मिनट बाद सिटी बसें मिलती रहती हैं । नागर कोविल में बसों का बड़ा अड्डा है । बाजार छोटा सा है पर बहुत

समृद्ध और सुन्दर है। दुकानें माल से लदी पड़ी हैं। कई अच्छे होटल भी हैं।

शुचींद्रम मन्दिर बहुत बड़ा और पवित्र है। शिवजी यहाँ पर भगवान सुन्दरेश्वर के नाम से जाने जाते हैं। बहुत प्राचीन और कलात्मक मन्दिर है यह। यहाँ महर्षि अत्रि ने भीषण तप किया था तो देवताओं का राजा इंद्र घबड़ा गया और तीनों भगवान—ब्रह्मा, विष्णु, महेश—से प्रार्थना की कि महाराज ! मेरी गद्दी बचाइए।

त्रिमूर्ति भगवान का जब कोई वश नहीं चला तो उन्होंने झुंझला कर निश्चय किया गया कि यदि महर्षि अत्रि की पतिव्रता पत्नी भगवती अनुसूया को भ्रष्ट कर दिया जाय तो स्वतः (Automati cally) अत्रि जी अपने तप से च्युत हो जायेंगे।

यह निश्चय करके तीनों भेष बदल कर देवी अनुसूया के सम्मुख पहुँचे और यह माँगा कि स्नान करके नंगे बदन हमें स्तनपान कराओ। यह कुप्रस्ताव कोई साधारण व्यक्ति नहीं कर सकते। अपने तेज से उन्होंने इन तीनों को पहचान लिया। मुस्कराकर कहा—हे पुत्रों ! ऐसा ही होगा। यह कहकर महर्षि के कमंडलु से उन पर जल छिड़क दिया।

यह लो ! क्षण भर में वे तीनों एक-एक माह के दुधमुँहें बालक बन गए और वहीं जमीन पर लोट कर लगे किलकारी मारने ! माता अनुसूया मन ही मन मुस्कराई और आँचल की ओट में उन्हें स्तनपान कराने लगीं।

इधर इन तीनों देवों की अनुपस्थिति से ब्रह्माण्ड में हाहाकार मच गया। जैसे सेनापति के न रहने से सेना में अव्यवस्था फैल जाती है। वैसे ही चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई। ब्रह्माणी,

लक्ष्मी और पार्वती जी अपने-अपने स्वामियों को खोजती-खोजती तपस्विनी अनुसूया के आश्रम में आईं तो तीनों विधाताओं को बालक रूप में उनकी गोदी में खेलते पाया।

तीनों महादेवियों ने पूज्य अनुसूया की बहुत विनती-चिरौरी की, इनके अपराध क्षमा करके इन्हें पहले जैसा बना देने की प्रार्थना की। माता को दया आ गयी और वे तीनों फिर अपने पूर्व रूप में आ गए। इसी रूप में तीनों यहाँ विराजते हैं।

भगवान विष्णु और शिवजी के बड़े-बड़े और अलग-अलग मन्दिर यहाँ हैं। बेचारे ब्रह्मा जी उपेक्षित होकर बाहर एक छोटे से मंदिर में विराज रहे हैं। इन दोनों से तो वे बहुत बुड्ढे और ज्ञानवान थे। उनका उक्त पापकर्म में हिस्सा लेना अधिक गुरुतर अपराध समझा गया और उनको बेदर्दी से एक मन्दिर के एक कोने में पधरा दिया गया। उनको कोई सवारी भी नहीं दी गई, जबकि भगवान विष्णु के आगे गरुड़ और भगवान शिव के सामने नन्दी महराज विराजमान हैं।

परिक्रमा में विघ्न विनाशक गणपति, स्वामिकार्तिकेय और माता पार्वती के मन्दिर भी अपने क्रम से बने हैं। एक छोटे से मन्दिर में नटराज नृत्य कर रहे हैं। यहाँ महावीर हनुमान की विशाल-काय मूर्ति बहुत ही आकर्षक है।

सारा मन्दिर दक्षिण के अन्य मन्दिरों की भाँति भव्य और उच्च कोटि का कलापूर्ण है। हनुमान जी की मूर्ति के सामने वाले दालान में चार खम्भे लगे हैं जिनकी बनावट देखकर सब दंग रह जाते हैं। बारह फीट गोलाई के मजबूत पत्थर में बारीकी से खोद-कर बनाए गए खम्भे भारतीय प्राचीन लक्षण-कला के सर्वोत्कृष्ट

नमूने हैं। और भी उनके खम्भे महरावें आदि भी सुन्दरतापूर्वक बनाई गई हैं। यहाँ भी हमें सात खम्भों वाला सप्त सुरों को देने वाला पाषाण खंड मिला। यह उस समय अनावृत्त था अतः हम लोगों ने जी भर कर उसे बजाया; पर अब इसे भी कटहरे के भीतर बन्द कर दिया गया है ताकि हम बानरों की सेना से कुछ समय तो और सुरक्षित रह ले।

आगे बढ़े और लीजिए हमारी मंजिल सामने दीखने लगी—जय कन्याकुमारी। भारत का अन्तिम छोर। सामने हिंद महासागर अपने किसी अपराधवश, अपने देश से अलग कर दिए जाने के कारण भारत के पैरां पर सिर पटकता, सिर धुनता है; पर अब व्यर्थ है। बेकार शोर मचाए जा रहे हो। अब कुछ होने का नहीं। बायीं ओर बंगाल की खाड़ी है और दाहिनी ओर अरब सागर हहरा रहा है। दूर-दूर तक इन तीनों का गर्जन तर्जन सुनाई देने लगता है। भूमि की एक लम्बी पट्टी दूर तक समुद्र के भीतर चली गई है। ठेठ दक्षिण में हिन्द महासागर के किनारे गाँधी मण्डप नामक बहुत मजबूत और सुन्दर तिमंजिली विल्डिग बनाई गई है। यहीं पर महात्मा गाँधी जी की भस्मी समुद्र के संगम में प्रवाहित की गई थी और उनकी स्मृति में यह स्मारक बनाया गया है।

हम जब पहुँचे तब शाम होने वाली थी। हम लोग चटपट तिमंजिले पर पहुँचे। सूर्यास्त होने वाला था। पर यह क्या? पश्चिमी क्षितिज पर बादल आ गए और उन्होंने सूर्य भगवान को अपने अंक में ले लिया। उन्हें हम लोगों की नजर लग जाने का डर था।

कन्याकुमारी का सूर्यास्त और सूर्योदय बड़ा मनोरम होता है। उसे देखने के लिए ही सैकड़ों पर्यटक महीनों वहाँ पड़े रहते हैं, पर बिरले भाग्यवानों को ही यह सुख देखने को मिलता है। मैं अब तक पन्द्रह बार कन्याकुमारी गया पर मेरे भाग्य में यह सुखद दृश्य देखना बदा ही नहीं था।

कन्याकुमारी के सूर्यास्त की छटा सुप्रसिद्ध साहित्यकार स्वर्गीय मोहन राकेश के शब्दों में सुनिए—"सूर्य पानी की सतह के पास पंहुच गया था। सुनहरी किरणों ने पीली रेत को एक नया सा रंग दे दिया था। उस रंग में रेत इस तरह चमक रही थी जैसे अभी अभी उसका निर्माण करके उसे वहाँ उँडेला गया हो। मैंने उस रेत पर दूर तक बने अपने पैरों के निशानों को देखा। लगा जैसे रेत का कुँवारापन पहली बार उन निशानों से टूटा हो।

"सूर्य का गोला पानी की सतह से छू गया। पानी पर दूर-दूर तक सोना ही सोना ढुल आया। पर वह रंग इतनी जल्दी-जल्दी बदल रहा था कि किसी भी क्षण के लिए उसे एक नाम दे सकना असंभव था। सूर्य का गोला जैसे एक बेवसी में पानी के लावे में डूबता जा रहा था। धीरे-धीरे वह पूरा डूब गया और कुछ क्षण पहले जहाँ सोना बह रहा था वहाँ अब लहू बहता नजर आने लगा। कुछ क्षण और बीतने पर वह लहू भी धीरे-धीरे बैजनी (Purple) और फिर काला पड़ गया।"

"मैंने फिर एक बार मुड़ कर दायीं तरफ देख लिया। नारियलों की टहनियाँ उसी तरह हवा में ऊपर उठी थीं, हवा उसी तरह गूँज रही थी पर पूरे दृश्य पट पर स्याही फैल गई थी। एक दूसरे से

दूर खड़े झुरमुट, स्याह पड़कर जैसे लगातार सिर धुन रहे थे और हाथ पैर पटक रहे थे।"

यह है सूर्यास्त का कलात्मक वर्णन एक कवि की दृष्टि में। जिसने देख लिया निहाल हो गया। किसी सुख से इसकी तुलना नहीं हो सकती। सूर्योदय भी इसी प्रकार अनुपम होता है। उनको भाग्यवान कहना चाहिए जिसने इन दोनों को देख लिया, स्वर्गीय सुख लूट लिया।

कन्याकुमारी भारतवर्ष की दक्षिणी सीमा का अंतिम स्थान है। इसके आगे न तो कोई भूमि है न कोई बस्ती। केवल जल ही जल और अथाह समुद्र। बाईं ओर कुछ दूर समुद्र में एक शिला सी उठी है। इसको विवेकानन्द शिला कहते हैं। जब स्वामी विवेकानन्द जी यहाँ आए थे, तब इस एकांत स्थान की मनोहरता से रम गए थे, बड़े मुग्ध हो गए थे। मन में प्रेरणा होने पर तैर कर वे इस शिला पर किसी प्रकार पहुँच गए और कई दिनों तक निराहार रहकर कठिन तपस्या की थी।

तभी से यह शिला "विवेकानंद शिला" के नाम से जानी जाती है। अब तो यहाँ करोड़ों रुपये की लागत से विवेकानंद स्मारक बन गया है। इस स्मारक के निर्माण में सभी का समुचित सहयोग है। महाशय एकनाथ की कठिन साधना से यह सपना पूरा हो सका। अब पर्यटक इसे भी देखकर काफी संतोष पाते हैं।

सूर्यास्त नहीं देख सके तो समुद्र में स्नान करने की सोची गई। किनारे पर दीवाल बनाकर एक छोटा तालाब बना दिया गया है जिसमें हर समय समुद्र की उत्ताल तरंगें ताजा पानी भरती हैं। यहाँ अपेक्षाकृत लहरों का वेग कम है, अतः मेरे जैसे लोग जो तैरना

भी नहीं जानते, निरापद नहा सकते हैं। रामेश्वरम् के बाद यह हमारा दूसरा समुद्र स्नान था। पर रामेश्वरम में नहाते समय सुख की जो अनुभूति हुई थी वह यहाँ नहीं हुई, रामेश्वरम् में तो समुद्र शांत लेटा सा लगता था, पर यहाँ ? अरे बाप रे! यहाँ भयंकर गर्जन-तर्जन के कारण मन भय से काँप उठता था।

स्नान करके मंदिर दर्शन करने चले। कन्या देवी का मंदिर तो समुद्र की अंतिम नोक पर है। आगे कोई भी मकान नहीं। कन्या देवी की मूर्ति बहुत सुंदर और सुहावनी है। इतनी सुंदर मूर्ति हमें कम ही देखने को मिली। काले पत्थर की मूर्ति पर गाढ़े चंदन का मोटा लेप कर दिया है इससे मूर्ति तेजस्वी होकर दप-दप करने लगती है।

भगवती कन्या कुमारी की कथा भी रोचक है। कहते हैं कि बाणासुर दैत्य के अधिक उत्पात मचाने से जब देवता बहुत कष्ट पाने लगे तब उन्होंने भगवती से प्रार्थना की। देवी ने कन्या रूप में अवतीर्ण होकर यहीं बाणासुर का संहार किया था। यहीं उन्होंने अपना निवास भी बना लिया। तभी से यह स्थान कन्याकुमारी अंतरीप (Cape Camorin) कहलाने लगा। और भी कई कहानियाँ इस संबंध में प्रचलित हैं।

मंदिर के निकट ही 'पापविनाशन' नामक एक बड़ा तालाब है। एक फर्लांग की दूरी पर एक दूसरा तालाब भी है। यहाँ नित्यप्रति हजारों यात्री और सैलानी आते रहते हैं। अतः यहाँ धर्मशाला और डाक बंगले हैं। अब तो कई अच्छे होटल भी खुल गए हैं जहाँ निवास के साथ सुन्दर और स्वादिष्ट भोजन भी मिल जाता है।

बरसों की साध पूरी हुई। अपने पूर्वजों के पुण्यप्रताप और नीलम के चमत्कार से आखिरी मंजिल कन्याकुमारी के दर्शन कर लिए। अब वापस लौटना था। कन्याकुमारी अब तमिलनाडु में है। पहले यह त्रावनकोर के राजा के अधीन था पर यहाँ तमिल भाषी बहुत हैं अतः यह आसानी से तमिलनाडु का भाग बन गया है।

मैं आया था त्रिवेंद्रम की ओर से। वापसी मैंने तिरुनेलवेली होकर सोची। पुनः नागरकोविल होते हुए हम तिन्नेवली (तिरुनेलवेली) की तरफ बढ़े। रास्ते में परमाकुडी नाम का एक मंदिर पड़ा। यह छोटे नारायण के नाम से प्रसिद्ध है। मंदिर बहुत प्राचीन है। पूजा की व्यवस्थः साधारण ही है। यहाँ मुख्य मंदिर में भगवान शंकर का दर्शन है। कहते हैं महावीर हनुमान कैलाश पर्वत से दो शिवलिंग लाए थे जिनमें से एक तो सेतुबंध रामेश्वरम् में हनुमदीश्वर नाम से प्रसिद्ध है, दूसरा यहाँ स्थापित है। एक मंदिर में राम, लक्ष्मण, जानकी, तथा हनुमान के दर्शन होते हैं, दूसरे मंदिर में लक्ष्मी जी हैं। बाहर से एक मंदिर में भगवान श्री विष्णु छोटे नारायण के नाम से प्रसिद्ध हैं।

आगे बढ़ने पर तिरुकंरुकुडी (लंबे नारायण) का मंदिर है। यहाँ विष्णु भगवान की तीन अवस्थाओं के दर्शन होते हैं। एक मंदिर में भगवान खड़े होने के कारण लंबे नारायण कहलाते हैं। दूसरे मंदिर में वे बैठे हुए दर्शन देते हैं और तीसरे में वे शेषशय्य ही हैं। दो एक छोटे मंदिर और हैं।

अब हमें नागनेरी (तोताद्रि) नामक मंदिर मिला। यहाँ श्रीमद् रामानुजाचार्य जी का आदि (पुराना) मठ है। श्री विष्णु-

भगवान यहाँ तो तादि्र नारायण के नाम से प्रसिद्ध हैं। मंदिर बहुत बड़ा और दक्षिण भारत की ख्याति के अनुरूप है। पूजनादि का सुप्रबंध है। भगवान को यहाँ नित्य तेल से स्नान कराते हैं, यह तेल एक कुंड में संग्रह होता रहता है। यात्री इसी को प्रसाद के रूप में ले जाते हैं।

इस तेल का गुण यह है कि हर प्रकार के चर्म रोग में बहुत लाभप्रद है। यहाँ भी केरल की भाँति नंगे बदन केवल धोती पहने ही आप मंदिर में दर्शनार्थ जा सकते हैं। यदि आप पैजामा, पतलून अथवा अन्य विदेशी ढंग के वस्त्र पहने हैं तो आप मंदिर के गेट पर ही रोक दिये जायेंगे, भीतर नहीं जा सकते।

तिरुनेलवेली में ताम्रपर्णी के पवित्र जल में स्नान करके तन स्वच्छ और मन पवित्र हो जाता है। धर्मशाला स्टेशन के पास ही है। शहर स्टेशन के पास ही है। यह भी बहुत स्वच्छ शहर है। त्रिवेंद्रम के बनिस्बत कन्याकुमारी को यह रास्ता ज्यादा आसान और स्वच्छ है। यहाँ से रेल द्वारा तिरुचेंदूर भी जा सकते हैं जो समुद्र के किनारे है और यहाँ कार्तिकेय स्वामी का प्रसिद्ध मंदिर है। मैं भी एक बार दर्शन कर आया था। मन को बहुत सुख मिला था।

रमणीक मदुराई में

समय भाग रहा है; किसी के रोके नहीं रुकता। हमें भी चलना चाहिए। रात की गाड़ी से चलकर सबेरे मदुराई आ गए। पास ही स्टेशन के बिल्कुल निकट मारवाड़ी धर्मशाला में आ गए।

रेलवे के नक्शे को गौर से देखिए दक्षिण का मदुराई और उत्तर प्रदेश वाला मथुरा कहाँ है? दोनों ही पवित्र तीर्थ हैं और

रेल द्वारा एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। मदुराई जंक्शन से 400 मील दूर मद्रास एगमोर पर आइए और मद्रास सेंट्रल से जी०टी० अथवा अन्य कोई भी एक्सप्रेस पकड़कर झाँसी, ग्वालियर, आगरा होते हुए मथुरा उतर जाइए। और सुनिए तमिल में 'थ' को 'द' पढ़ा और बोला जाता है। अतः हमारा मथुरा उनका मदुरा (मदुराई) हो गया। है न भावात्मक एकता ?
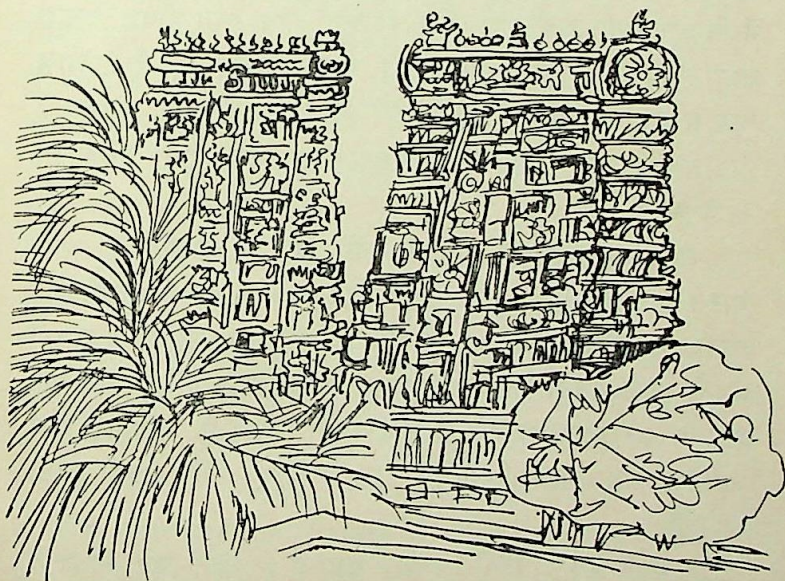
मदुरा का मीनाक्षी मंदिर

तमिलनाड में मद्रास के बाद मदुराई का स्थान गिना जाता है; बलि यहाँ भगवती मीनाक्षी देवी का जगत प्रसिद्ध मंदिर होने से इसका सांस्कृतिक महत्त्व मद्रास से भी अधिक है। [illegible]धज में भी यह

मद्रास से कम नहीं। अब तो अनेक रेल कारखाने भी खुल गए हैं और खुलते जा रहे हैं। दिनोदिन मदुराई नगर की उन्नति हो रही है।

दक्षिण में एक से एक बढ़कर मंदिर हैं; मदुराई के मीनाक्षी मंदिर की छटा ही निराली है, उसकी तुलना तो किसी से भी नहीं की जा सकती। उस प्राचीन (अविकसित) समय में इसे बनवाने में कितना रुपया खर्च हुआ होगा, कितना समय लगा होगा, इतना सामान कहाँ से आया होगा—इसकी कल्पना सहज नहीं है। आज कल के इस भ्रष्टाचार के युग में ऐसा मंदिर बनवाना तो असंभव है ही; यहाँ का एक मामूली कलात्मक खंभा बन जाना भी कठिन ही है।

धर्मशाला पहुँच कर मानों मैं अपने प्रदेश में आ गया। उत्तर भारत के सैकड़ों यात्री और एजेन्ट रोजाना यहाँ आकर ठहरते हैं। चारों तरफ हिंदी, हिंदी और हिंदी। अवधी सुन लीजिए (हमारी अपनी बोली अवधी है) व्रजभाषा सुन लीजिए, भोजपुरी सुन लीजिए, मराठी, गुजराती और बंगाली भी अपनी बोली में बतियाते मिल जायँगे। यह धर्मशाला भी एक पवित्र तीर्थ की भाँति अच्छा खासा संगम है।

मदुराई में भी हिंदी प्रचार सभा है। पहले यह मंदिर के पश्चिमी गोपुरम के बिल्कुल पास थी (अब दूर चली गई है) स्टेशन और धर्मशाला में बहुत से पंडे पीछे हो लिए, पर मैंने निश्चय किया था कि सभा से प्रार्थना करूँगा कि किसी हिंदी प्रेमी भाई को मेरे साथ भेज कर भली भाँति दर्शन करवा दें।

सभा ने मेरे साथ मंदिर के दर्शन कराने के लिए श्री एम० के० रत्न

सभापति जी को भेजा। इस साठ वर्ष के चिर-युवा की अट्टहास युक्त धारावाही हिंदी ने वर्षों मुझे आनंदित किया। ये सज्जन बहुत दिनों तक इलाहाबाद और वाराणसी में हिंदी पढ़ने के लिए रहे थे इसलिए इनको हिंदी के साथ देवनागरी लिपि में लिखी उर्दू भाषा से भी बड़ा प्रेम है और उर्दू की शेरोशायरी बड़े लय से गाया करते हैं।

श्री रत्न सभापति जी के साथ मंदिर में दर्शन करने में बहुत आनंद और सुख मिला। जब-जब भी मैं मदुराई गया और अपने साथ किसी को दर्शन कराने ले जाना हुआ तो उनको ही बार-बार कष्ट दिया करता था। जब मैं 1962 में अपने पिता जी को दर्शन कराने ले गया था तब दोनों की जोड़ी खूब रही, "खूब मजा आया जब मिलके बैठते दीवाने दो।" हम-उम्र, हम-शक्ल, और उर्दू के अच्छे जानकार (और हम-क़द भी) उस दिन वास्तव में श्री रत्न सभापति जी को गाइड बनने का अच्छा आनंद मिला होगा।

मंदिर का प्रवेश पूर्वी द्वार से होता है। भीतर पहुँचते ही भाँति-भाँति की कलात्मक वस्तुओं, प्रसाद और फूल मालाओं की दुकानें शुरू हो जाती हैं। अच्छा-खासा, लंबा-चौड़ा बाजार है। यहाँ से आगे चलने पर भगवती मीनाक्षी का मंदिर है। पर ठहरिए, मंदिर में प्रवेश करने के पहले स्वर्ण कमल सरोवर में नहा लीजिए, यहाँ नहाना बहुत शुभ है। क्या कहा, नहा आए हैं ? कोई बात नहीं हाथ मुँह धो लीजिए। देखिए, सरोवर के बीचोबीच में स्वर्ण कमल तैर रहा है। जी हाँ, असली सोने का! कोई चुरा नहीं लेता? जाइए आप भी ट्राई (Try) कीजिए, पर देखिए कहीं आप ही···। जाने दीजिए, लालच बुरी बला है।

उत्तरी द्वार से मंदिर में जाने के मार्ग में तालाब Teppaculam के किनारे-किनारे जो गैलरी बनी है उसकी छत पर सैकड़ों ऐतिहासिक एवं कलात्मक चित्र बने हैं। दीवार पर संपूर्ण 'तिरुक्कुरल' (तमिल का वेद) लिखा गया है। इन चित्रों को दूर से देखिए तो भी आनंद आएगा। पास से देखिए, अध्ययन पूर्वक देखिए तो और भी आनंद मिलेगा।

कहा जाता है कि इस संपूर्ण मंदिर की रंगाई (Colouring) के लिए अमेरिका सरकार ने 27 लाख का अनुदान दिया था इससे मंदिर में नई जान आ गई है।

इन चित्रों को देखते हुए और 'तिरुक्कुरल' पढ़ते हुए (लेकिन आप पढ़ेंगे कैसे, वह तो तमिल लिपि में है) मंदिर में आजाइए। अब बरामदे की शोभा देखिए एक-एक स्तंभ के सामने घंटों निरखते रहिए—तबियत नहीं भरेगी। अद्वितीय अद्‌भुत, सुंदर तक्षण कला है। प्रत्येक स्तंभ का एक-एक इंच भाग कलापूर्ण है। आपका मन मुग्ध हो जायगा।

देखिए यहाँ शिव-पार्वती का विवाह हो रहा है। लज्जाशील मीनाक्षी का लज्जा भाव (नववधू की लज्जा) कलाकार ने कितनी कुशलता से गढ़ी है। भगवान विष्णु खुद विवाह करा रहे हैं। इधर देखिए, भगवान सुंदरेश्वर (शिवजी) और भगवती मीनाक्षी में नृत्य प्रतियोगिता हो रही है। दोनों में कोई घटकर नहीं। भगवती को हराने में भगवान के पसीना आ गया—पसीना भी साफ दिखाई दे रहा है। अब कैसे हराएँ ?

सहसा एक युक्ति उन्हें सूझी। अपने सिर का रत्न जमीन पर

गिरा दिया और दाहिने पैर के अँगूठे से उठाकर पुनः मस्तक पर रख लिया। अब भगवती ! तुम करके दिखाओ।

भगवती तो शर्मा गईं। वे निष्कलुष नारी हैं। ऐसा करके वे कैसे दिखावें क्योंकि ऐसा करने से तो पूरी जाँघ उधर जाती है। बाज आयी ऐसी प्रतियोगिता से ! तुम पुरुष लोग तो बेशरम हो हो ! जाओ, तुम ही जीते।

इसी के बगल में हजार खंभे वाला मंडपम् हैं (One thousand Pillers) जी हाँ, पूरे एक हजार ! जाइए, गिन लीजिए एक-एक स्तंभ को देखते आइए कि किस कारीगरी से, किस कुशलता से फिट किए गए हैं कि आप कहीं भी खड़े होइए बैठिए; लोग आपको देख सकते हैं और आप उनको। आप अपने लखनऊ के बड़े इमामबाड़े की तारीफ करते नहीं अघाते। कहिए है न उसकी टक्कर का ?

अब आगे आइए, एक जगह रुकिए नहीं, दूसरों को भी देखने का मौका दीजिए। यह देखिए, कटहरे से घिरा स्वर्ण स्तंभ। एक बात बतादें। मंदिर तो स्त्रीलिंग है न ! नहीं है, तो भी समझ लीजिए। जिस प्रकार एक धनी स्त्री अपने शरीर पर गहने पहन कर अपने वैभव का प्रदर्शन करती है, उसी प्रकार दक्षिण के सभी मंदिर भी अपने वैभव के प्रदर्शनार्थ मुख्य गर्भगृह के आगे 'स्वर्ण स्तंभ' की विशालता और गहनता में मंदिर की श्री संपदा स्पष्ट क्यों हैं।

आइए, अब दरवाजे से भीतर चलें। यह दूसरा दालान है। देखिए, यहाँ कितनी शाँति है। यहाँ भगवती मीनाक्षी का विशाल और वैभवपूर्ण मंदिर है। मंदिर के भीतर भगवती मीनाक्षी विराजती हैं। कितनी सुंदर मूर्ति है। दो कोठरियों के भीतर भगवती मानों अंतःपुर में हैं। केवल पुजारी ही वहाँ जा सकते हैं। न, न,

आगे न जाइए; बस, यहीं रस्सी के कटहरे तक ही रहिए। आगे का रास्ता विशिष्टों (V.I.P's.) के लिए है।

यह क्या ? आप सुस्त क्यों हो गए ? समझ गया, यहाँ से आपको मूर्ति के दर्शन अच्छी तरह नहीं हो पा रहे हैं। क्यों घबड़ाते हैं ? आप तो मेरे साथ है न। कमीज और बनियान उतार दीजिए। आइए, तमिल में गिट-पिट सिटपिट करता हूँ। लीजिए पटा लिया। जाइए सहायक पुजारी के साथ भीतर चले जाइए। देखा न ! कितनी सुन्दर मूर्ति है। सहायक पुजारी को चार आना दे दीजिए, दे भी दीजिए। गरीब आदमी है। यहाँ सब ऐसा ही चलता है। खैर, आनन्द आया न ?

माता जी के मन्दिर की परिक्रमा करके बाहर आइए। बाहर के दूसरे दालान से होकर भगवान सुन्दरेश्वर के दर्शन कीजिए। इनकी मूर्ति भी माता की मूर्ति के समान ही सुन्दर और मोहक है।

दोनों मन्दिरों की परिक्रमा अलग-अलग है। बाहरी दालान एक ही है। इस पूरी परिक्रमा में अनेक देवी देवताओं के दर्शन मिलते हैं। विघ्न विनाशक गणपति की विशालकाय मूर्ति देखी ? इनकी भभूत सिर पर लगाइए। मैं भगवती का सिन्दूर ले आया हूँ। इसे पुड़िया में रख लीजिए। अपनी पत्नी को दीजिएगा-अखण्ड सौभाग्यवती भाग्यवती भव !

चलिए, अब बाहर चलें। एक चीज और आपको दिखाऊँगा, समूचे पत्थर का यह स्तम्भ है। इसमें सात खंभे है। हर खम्भे को एक पत्थर से बजाइए। अलग-अलग सुर निकलेंगे। सात खम्भे, सात सुर। सप्त सुर। सप्त स्वर !

थोड़ा शहर घूम लीजिए। भूख लग रही है ? आपको जटा-

मुनि कोविल स्ट्रीट ले चलता हूँ। यहाँ बांबे मील्स नाम से एक गुजराती होटल है। Rs. 1.50 की पूरी थाली मिलती है। पेट भर खाइए। अपने यहाँ भी रोटी-दाल खाइए। खूब तृप्त हो गए न! बहुत दिनों बाद ऐसा सुस्वाद भोजन मिला होगा।

मदुराई शहर बहुत बड़ा और तमिलनाडु का व्यापारिक केन्द्र हैं। मदुरा शहर हाथ के बने हुए बारीक कपड़े और साड़ियों के लिए प्रख्यात है। यहाँ की जरी किनारे के पल्ले की धोती, दुपट्टे, साड़ी आदि बहुतायत से बनकर देश-विदेशों में दूर-दूर तक जाती हैं। रामनाथ जिले और केरल की सीमा से लगे होने के कारण यात्रियों का आवागमन यहाँ बहुत ही अधिक है। स्टेशन भी बहुत सुन्दर बन गया है। स्टेशन के पास ही नगर महापालिका द्वारा संचालित मंगम्माल धर्म शाला भी है। दक्षिण में धर्मशाला को क्षेत्रम कहते हैं जो अँग्रेजी लिपि की कृपा से छत्रम या छतरम हो गया। यह धर्मशाला भी बहुत सुव्यवस्थित है और थोड़ा किराया देकर ठहरने की अच्छी जगह है।

मंदिर से डेढ़ मील दूरी पर तिरुम्मल नायक का महल है। लखनऊ के इमामबाड़े की भाँति यह भी ईंट चूने गारे का बना हुआ है और अभी भी बहुत मजबूत है। यह सन् 1623 में 40 वर्ष में बन कर तैयार हुआ और साढ़े तीन सौ बरस पुराना होने पर भी नए की भाँति है। इसके तीन-तीन मंजिल तक ऊँचे विशाल खम्भे दर्शकों का मन आर्कषित कर लेते हैं। आजकल यहाँ सरकारी कार्यालय और कचहरी हैं।

रामनद (रामनाथ) रोड पर शहर ही में दो मील दूर शौकीन हाई स्कूल के पास एक बड़ा तालाब है। इसमें टापू की भाँति एक

बाग और एक बड़ा दुमंजिला कमरा है। जब सारा मदुराई शहर आग की भाँति तपता होता है तब शौकीन लोग यहाँ पिकनिक करने आ जाते हैं। दस बजे सबेरे आते हैं, यहीं साथ में लाया हुआ खाना पीना करते हैं, आराम करते हैं और शाम को वापस चले जाते हैं। बाग के चारों ओर पानी होने के कारण बड़ी ठंडी हवा चलती है जो शरीर को सुख देती है।

श्री एम० के० रत्न सभापति जी के मार्ग दर्शन में, मदुराई में बहुत आनंद आया। तबसे छब्बीस बार उन्हें कष्ट दे चुका हूँ (दस बार वे मुझे मिले नहीं) पर वे हैं कि हर वक्त तरो ताजा रहते हैं और उसी उत्साह से मन्दिर आदि का मार्गदर्शन करते हैं। उनके कुशल और चटपटे मार्ग दर्शन के कारण मद्रास से भी अधिक मदुराई मेरे लिए स्मरणीय और वंदनीय हो गया है।

भगवती मीनाक्षी के भव्य और अति सुन्दर मंदिर ने मेरे बाल मन पर ऐसा आदर प्रभाव डाला कि अभी भी हरेक से उसके गुण गाता फिरता हूँ। मेरी तो मान्यता यह है कि किसी चमत्कार वश मै यदि एक दिन के लिए ही सही, भारत का राष्ट्रपति बन जाऊँ तो मुहम्मद तुगलक की भाँति उत्तर के सारे हिन्दुओं को मदुराई जाना अनिवार्य कर दूँ ताकि वह देखें कि दक्षिण में हिन्दू धर्म किस कारण और किसके प्रभाव से आज भी जीवित ही नहीं, फूल-फल भी रहा है।

पवित्र रामेश्वरम् में

मान-मदुराई होती हुई हमारी गाड़ी जब रामनाथपुरम् पहुँची तो सबेरा हो गया था। चारों तरफ बालू ही बालू! हरियाली के नाम

पर केले और नारियल के मरे-सूखे से पेड़ जो कभी पास आते तो कभी दूर भाग जाते। रामनाथपुरम् यहाँ का सदर मुकाम है। रामेश्वरम् इसी के अन्तर्गत आता है।

रामनाथपुरम् से नौ मील दूर एक विचित्र मंदिर है—नैन्नोर कोविल यहाँ नागराज की पूजा होती है। मंदिर के तालाब के पानी में अद्भुत शक्ति है। दूर-दूर से असाध्य रोगों के मरीज यहाँ आते हैं और स्वस्थ होकर जाते हैं। पर इस तालाब का पानी मंदिर में से बाहर ले जाते ही बे असर हो जाता है। विचित्र बात है न?

दूसरी विचित्र बात यह है कि यहाँ हिंदू-मुसलमान समान भाव से पूजा करते हैं। बात यह है कि त्रिचनापल्ली के नवाब ने और मंदिरों की भाँति इसे भी तोड़ना चाहा तो यहाँ के निवासियों और पुजारियों ने प्रार्थना की, कि यह एक चमत्कारिक मंदिर है। इसे न तोड़िये तब उसने कहा कि मैं एक शर्त पर इस मंदिर को नहीं तोड़ूँगा वह यह कि इस मंदिर में दर्शन करते ही यदि मेरी गूँगी लड़की बोलने लगेगी तो मैं भी इस चमत्कारी मन्दिर का कायल हो जाऊँगा।

अचम्भे की बात यह हुई कि मंदिर में दर्शन करते ही वह लड़की खटाखट बोलने लगी। नवाब श्रद्धा से गद्गद् हो मूर्ति के सामने गिर पड़ा और कई घण्टे तक भावावेश में वहीं पड़ा रहा।

इस मन्दिर को दर्शनार्थ जाने वाले यात्री एक बात सावधानी पूर्वक याद कर रखें कि यहाँ जो भी मनौती मानी जाय, उसे पूरा अवश्य किया जाय; नहीं तो नागराज स्वप्न में चेतावनी देकर अनिष्ट कर सकते हैं। भगवान की क्या-क्या लीलायें हैं।

धनुष्कोटि समुद्र में डूब जाने से अब रामेश्वरम् को सीधे गाड़ी चली जाती है, नहीं तो पहले समुद्र पार करने के बाद पामबन जंक्शन पर रामेश्वरम् के लिए गाड़ी बदलनी पड़ती थी और दूसरी गाड़ी सीधे 21 किलोमीटर दूर धनुष्कोटि चली जाती थी। वहाँ समुद्र तीन ओर है अतः यहाँ पृथ्वी धनुषाकार होकर समुद्र में घुस गई है इसी से इसका नाम धधुष्कोटि पड़ा था। यहाँ संगम में स्नान करके श्राद्ध तर्पण करना बहुत पुण्य दायक समझा जाता था। धनुष्कोटि से लंका को जहाज जाया करते थे, अब रामेश्वरम् से आते जाते हैं।

मण्डप्पम कैंप पार करते ही समुद्र की खाड़ी शुरू हो जाती है। इस पर दक्षिण रेलवे ने अथाह रुपया खर्च करके दो किलोमीटर लम्बा बीच से टूट जाने वाला (ताकि बड़े जहाज नीचे से निकल जायँ) रेल का इकहरा पुल बनाया है जिसे देखकर भारतीय इंजीनियरों की कार्य कुशलता पर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। हम लोगों ने वैसे भी समुद्र नहीं देखा है तिस पर समुद्र के ऊपर रेल गाड़ी में बैठकर चलना वैसी ही अनुभूति देता है कि हम भी "राम के काज" लंका विजय करने के लिए समुद्र पर पुल बाँध कर जा रहे हैं। पहले जब पुल नहीं बना था तब सब लोग स्टीमर से जाते थे। उन दिनों क्या दुर्दशा होती थी—न कहना, न सोचना ही ठीक है। अब जब से यह रेल पुल बन गया है तब से रामेश्वरम् यात्रा बहुत सरल हो गई है।

रेल का यह इकहरा पुल पत्ते की भाँति काँपता रहता है। जिस वक्त रेल इस पर से होकर जाती है तब उसकी रफ्तार चींटी की भाँति हो जाती है और जहाँ पर जहाज जाने के लिए

पुल तोड़ दिया जाता है, वहाँ तो गाड़ी बिल्कुल रुक-रुक कर चलती हैं।

कुछ वर्षों पहले यहाँ समुद्र में भयंकर तूफान आया था। उसमें यह पुल तहस-नहस हो गया था और उन्हीं दिनों धनुष्कोटि नामक तीर्थ भी पूर्ण रूपेण पानी में डूब गया था। रेल का पुल तो फिर से बन गया पर वह तीर्थ गया तो चला ही गया। मेरा बड़ा सौभाग्य है कि मैं छः-सात बार वहाँ हो आया हूँ। अभी भी उसकी मधुर स्मृति मन में बसी है। क्या अब भी 'नीलम' के प्रभाव को अस्वीकार करना चाहिए था? खैर आपकी इच्छा।

मंडप्पम कैंप पर रेल गाड़ी काफी देर रुकती है। इंजन अपने पेट में खूब पानी-कोयला भर लेता है ताकि बीच समुद्र में टाँय-टाँय फिस्स न हो जाय। अतः हर गाड़ी यहाँ आधा घण्टा जरूर रुकती है। यहाँ सीलोन (लंका) जाने वाले यात्रियों की भली-भाँति चेकिंग होती है। इस बीच यात्रियों के पंडे पक्के हो जाते हैं।

मंडप्पम कैंप के बाद मंडप्पम स्टेशन आया और चार फर्लांग बाद हमारी रेल गाड़ी समुद्र पर बने पुल पर सरकने लगी। बहुत रोमांचकारी और आह्लादकारी क्षण थे वे। गाड़ी सरकती जाती और उसी के साथ हमारा दिल भी धड़कता जाता गाड़ी अब बीच समुद्र में वहाँ पर पहुँच गई जहाँ बड़े जहाज निकालने के लिए पुल को ऊँचा करके खड़ा कर दिया जाता था। विशालकाय दाँते-दार पहिए अद्भुत दृश्य उत्पन्न कर रहे थे। पुल बहुत मजबूत और कठोर पत्थर का बना हुआ था फिर भी यहाँ बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही थी जिनके कारण पुल के खम्भे हिलहिल उठते तब अच्छे-अच्छे लोगों का कलेजा मुँह को आ जाता।

पर जब तक विधाता का कोप नहीं होता, बुरे दिन नहीं आते तब तक "बाल न बाँका कर सकै। मार न सक्के कोय।" वह बुरा दिन किसी का भी न आवे। भगवान सबकी रक्षा करें। जिन दिनों यहाँ तथा धनुष्कोटि के समुद्र में भयंकर तूफान आया था, उस समय पुल पर एक यात्री गाड़ी थी। पुल टूटने से वह गाड़ी समुद्र में गिर पड़ी। सहज ही उस महादारुण दुख की कल्पना की जा सकती है।

उस दुर्घटना में काफी व्यक्ति बचा लिये गए, क्योंकि यहाँ तो कुशल नाविकों (मल्लाहों) की बस्ती है। दक्षिण रेलवे का बहुत नुकसान हुआ। लेकिन वाह रे दक्षिण वालों! तुम्हारे धैर्य और सन्तोष की दाद देने की इच्छा होती है! दक्षिण रेलवे इस भारी मुसीबत को झेल गई और उसके कुशल इंजीनियरों ने बहुत कम समय में पुल की मरम्मत कर दी और पुनः रेल यातायात चालू करवा कर उन्होंने देश और धर्म की महती सेवा की।

रामराम करके पुल पार हो गया और पामबन स्टेशन आ गया। मुझे यहाँ अपनी गाड़ी रामेश्वरम के लिए बदलनी थी, क्यों कि सीधी गाड़ी उस समय धनुष्कोटि को चली जाती थी। (अब तो सीधी गाड़ी रामेश्वरम् जाती है, पामबन में बदलनी नहीं पड़ती) पाँच-छह डिब्बों की शटलनुमा गाड़ी थी।

यहाँ से रामेश्वरम 10 किलोमीटर दूर है। बीच में एक छोटा स्टेशन पड़ा और लीजिए हिंदुओं के हृदय का हार चिर अभिलाषित रामेश्वरम स्टेशन सामने आ गया। हर्ष विह्वल मैं पागलों की भाँति स्टेशन की बालू अपने माथे लगाता कभी रामेश्वरम् नाम वाला

रेलवे का बड़ा पत्थर अपने सीने से चिपटा लेता था। दाहिने हाथ की भुजा (जिसमें नीलिम बँधा था) फड़क-फड़क उठती थी।

अपने परिवार में कदाचित मैं ही एकमात्र व्यक्ति था जिसने पहली बार रामेश्वरम् भूमि के दर्शन किए थे। फिर तो मानों ताँता लग गया। बड़े भाई दो बार यहाँ दर्शन कर गए। दो छोटे भाई और पिताजी मेरे साथ हो आए। अपने नीलम का मैं कृतज्ञ हूँ कि वह बार-बार यहाँ खींच लाता है। कितनी ही बार यहाँ आओ, यह वह स्थान है जहाँ तृप्ति नहीं होती।

स्टेशन से आधा मील पर मन्दिर है। सामने ही समुद्र तट है। यहाँ जगत गुरु शंकराचार्य की गद्दी बहुत अच्छी बनी है। समुद्र का पानी बहुत स्वच्छ किन्तु खारी है। पानी इतना साफ है कि शीशे की भाँति तल पर पड़ी चीज देख लो। यहाँ लहरें नहीं उठ रही थीं। काफी दूर तक समुद्र शांत था। पानी भी बहुत कम, घुटने घुंटने था। मैं आधा फर्लांग तक चला गया, पर पानी घुटने तक ही रहा। डुबकी लगाना कठिन था। अतः वहीं लेटकर किसी प्रकार स्नान कर लिया।

वैसे ही गीले-नंगे बदन पंडे के साथ मन्दिर में आया। मुझे यहाँ चौबीस कुण्डो में स्नान करना था। पानी ठंडा और मीठा था। बदन के साथ मन भी पवित्र हो गया।

हमने जहाँ समुद्र में स्नान किया था, वह रामेश्वर मन्दिर के पूर्व द्वार पर है। वह मूँगे की खाड़ी कहलाता है और अग्नि तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ स्नान करना आवश्यक है।

मन्दिर के पश्चिमी भाग में माधवतीर्थ नामक एक बहुत बड़ा कुंड है। कुण्ड में जाने के लिए चारों तरफ पक्की सीढ़ियाँ बनी हुई

हैं। यहीं पर माधव जी की मूँगे की मूर्ति है। यह स्थान सेतु के बहुत पास है अतः इसे सेतु माधव भी कहते हैं।

हमने जिन 12 कुंडों में स्नान किया था उनके कुछ नाम ये हैं अगस्त्य, गालव, कौंडिन्य, ब्रह्मा, सरस्वती, सावित्री, ऋणविमोचन, मंगल आदि। सर्व तीर्थ नाम से एक कुम्भ मन्दिर के भीतरी हाते में है। इसका जल बड़ा मीठा और शीतल है। गर्मी में भी यहाँ नहाने से झुरझुरी आती है। यहाँ टिकट लेना होता है। टिकट का टुकड़ा Counter foil भीतर दे देने से एक ढोल (Bucket) पानी एक नाली से ढुलका दिया जाता है जो नीचे बैठे यात्री पर पड़ता है और वह अच्छी तरह नहा लेता है।

रामेश्वरम् के मन्दिर की गणना भारत के बड़े मन्दिरों में की जाती है। मन्दिर के चारों ओर चार सुन्दर गोपुर से युक्त द्वार हैं। पूर्वी गोपुर (समुद्र के सामने वाला) सबसे ऊँचा है जो यात्रियों को दूर से दिखाई दे जाता है। पश्चिमी गोपुर बहुत प्राचीन है और यहीं पर बाजार लगता है। उत्तरी और दक्षिणी गोपुर छोटे-छोटे हैं। सारा मन्दिर 12 फीट ऊँची दीवाल से घिरा हुआ है।

अभी तक मैं आपको एक जरूरी बात नहीं बता पाया हूँ। वह यह कि दक्षिण भर में मन्दिर के चारों ओर जो परकोटे जैसी दीवार होती है वह बाहर की तरफ गेरू और सफेद खड़ी पट्टी से पुती होती हैं। यह इस बात की पहचान कराता है कि यहाँ इसके भीतर एक प्राचीन पवित्र मन्दिर है—अतः यहाँ सब प्रकार की शुद्धता रखना आवश्यक है। टट्टी पेशाब करना थूकना या अन्य कोई गन्दगी करना यहाँ वर्जित है। उचित भी यही है। हमारे उत्तर

भारतीय अज्ञानवश कोई काम कर बैठते हैं तो उन्हें लज्जित होना पड़ता है।

वस्तुत: दक्षिण भारतीय हिंदू आचार-विचार में हमसे बहुत पवित्र होता है। वह हरेक शरीर को भगवान का घर समझता है। शरीर तो आत्मा का निवास स्थान है ही। आत्मा परमात्मा दोनों एक हैं। इसलिए सबका शरीर एक मन्दिर के समान है। यात्रा में, गाड़ी में, रेल में कहीं भी उसका पैर किसी के शरीर से छू जाता है तो वह अभिवादन की सी-मुद्रा में प्रायश्चित स्वरूप अपना दायाँ हाथ माथे को छुआता है। यह इस बात का द्योतक है कि आपके शरीर को छू जाने के कारण वह शर्मिदा है और आपका अभिवादन कर रहा है।

अब इस बात की अपने यहाँ कल्पना कीजिए। लोग एक दूसरे को लातों से, ठोकरों से मारते हैं; यात्रा में जानबूझकर पैर बदन से छुआकर भी शर्मिदा नहीं होते। कहिए है न उनके और हमारे व्यवहार में अन्तर ?

रामेश्वरम् मन्दिर में भीतर तीन परिक्रयाएँ हैं। मन्दिर के दर्शकों को परिक्रमा पार करके ही जाना होता है। मन्दिर के परिक्रमा की संख्या-गणना रामेश्वर से की जाती है अर्थात् जहाँ श्रीरामचन्द्रजी द्वारा शिवलिंग स्थापित है वह पहली परिक्रमा हुई। उसके बाद दूसरी और फिर तीसरी परिक्रमा जो लगभग चार हजार फीट लम्बी और लगभग 17 फीट चौड़ी है। यह परिक्रमा मार्ग पाँच फीट ऊँचे चबूतरों पर बड़े-बडे खम्भों के बीच है। खम्भों की ऊँचाई तीस फीट के लगभग है। खम्भे पटे हुए हैं। इसका अर्थ यह है कि सारा परिक्रमा मार्ग पटा हुआ (Covered) है। मन्दिर के सभी प्रसिद्ध मन्दिर, कुंड और सरोवर इसी के अन्दर हैं।

हैं। यहीं पर माधव जी की मूँगे की मूर्ति है। यह स्थान सेतु के बहुत पास है अतः इसे सेतु माधव भी कहते हैं।

हमने जिन 12 कुंडों में स्नान किया था उनके कुछ नाम ये हैं अगस्त्य, गालव, कौंडिन्य, ब्रह्मा, सरस्वती, सावित्री, ऋणविमोचन, मंगल आदि। सर्व तीर्थ नाम से एक कुम्भ मन्दिर के भीतरी हाते में है। इसका जल बड़ा मीठा और शीतल है। गर्मी में भी यहाँ नहाने से झुरझुरी आती है। यहाँ टिकट लेना होता है। टिकट का टुकड़ा Counter foil भीतर दे देने से एक ढोल (Bucket) पानी एक नाली से ढुलका दिया जाता है जो नीचे बैठे यात्री पर पड़ता है और वह अच्छी तरह नहा लेता है।

रामेश्वरम् के मन्दिर की गणना भारत के बड़े मन्दिरों में की जाती है। मन्दिर के चारों ओर चार सुन्दर गोपुर से युक्त द्वार हैं। पूर्वी गोपुर (समुद्र के सामने वाला) सबसे ऊँचा है जो यात्रियों को दूर से दिखाई दे जाता है। पश्चिमी गोपुर बहुत प्राचीन है और यहीं पर बाजार लगता है। उत्तरी और दक्षिणी गोपुर छोटे-छोटे हैं। सारा मन्दिर 12 फीट ऊँची दीवाल से घिरा हुआ है।

अभी तक मैं आपको एक जरूरी बात नहीं बता पाया हूँ। वह यह कि दक्षिण भर में मन्दिर के चारों ओर जो परकोटे जैसी दीवार होती है वह बाहर की तरफ गेरू और सफेद खड़ी पट्टी से पुती होती हैं। यह इस बात की पहचान कराता है कि यहाँ इसके भीतर एक प्राचीन पवित्र मन्दिर है—अतः यहाँ सब प्रकार की शुद्धता रखना आवश्यक है। टट्टी पेशाब करना थूकना या अन्य कोई गन्दगी करना यहाँ वर्जित है। उचित भी यही है। हमारे उत्तर

भारतीय अज्ञानवश कोई काम कर बैठते हैं तो उन्हें लज्जित होना पड़ता है।

वस्तुत: दक्षिण भारतीय हिंदू आचार-विचार में हमसे बहुत पवित्र होता है। वह हरेक शरीर को भगवान का घर समझता है। शरीर तो आत्मा का निवास स्थान है ही। आत्मा परमात्मा दोनों एक हैं। इसलिए सबका शरीर एक मन्दिर के समान है। यात्रा में, गाड़ी में, रेल में कहीं भी उसका पैर किसी के शरीर से छू जाता है तो वह अभिवादन की सी-मुद्रा में प्रायश्चित स्वरूप अपना दायाँ हाथ माथे को छुआता है। यह इस बात का द्योतक है कि आपके शरीर को छू जाने के कारण वह शर्मिंदा है और आपका अभिवादन कर रहा है।

अब इस बात की अपने यहाँ कल्पना कीजिए। लोग एक दूसरे को लातों से, ठोकरों से मारते हैं; यात्रा में जानबूझकर पैर बदन से छुआकर भी शर्मिंदा नहीं होते। कहिए है न उनके और हमारे व्यवहार में अन्तर ?

रामेश्वरम् मन्दिर में भीतर तीन परिक्रयाएँ हैं। मन्दिर के दर्शकों को परिक्रमा पार करके ही जाना होता है। मन्दिर के परिक्रमा की संख्या-गणना रामेश्वर से की जाती है अर्थात् जहाँ श्रीरामचन्द्रजी द्वारा शिवलिंग स्थापित है वह पहली परिक्रमा हुई। उसके बाद दूसरी और फिर तीसरी परिक्रमा जो लगभग चार हजार फीट लम्बी और लगभग 17 फीट चौड़ी है। यह परिक्रमा मार्ग पाँच फीट ऊँचे चबूतरों पर बड़े-बड़े खम्भों के बीच है। खम्भों की ऊँचाई तीस फीट के लगभग है। खम्भे पटे हुए हैं। इसका अर्थ यह है कि सारा परिक्रमा मार्ग पटा हुआ (Covered) है। मन्दिर के सभी प्रसिद्ध मन्दिर, कुंड और सरोवर इसी के अन्दर हैं।

मन्दिर के उत्तरी पश्चिमी कोने में एक छोटी सी किंतु स्वच्छ साफ कोठरी है जिसमें आदमकद बड़ी-बड़ी सुन्दर मूर्तियाँ रखी हुई हैं। उसमें राम द्वारा रामेश्वर लिंग-स्थापना का दृश्य दिखाया गया है। और दूसरी ओर हनुमान जी अपनी पूँछ से उसे उखाड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं। पास ही खड़े सुग्रीव, विभीषण, तथा अन्य लोग इस दृश्य को कौतूहल से देख रहे हैं। इसकी भी एक कहानी समझ लीजिए तब आगे चलिए।

राजा सुग्रीव के आदेश से जब नल-नील ने समुद्र में सेतु बना दिया तब भगवान रामचन्द्र जी उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उनके मन में यह कामना (Desivre) प्रकट हुई कि यहाँ शिवलिंग की स्थापना करनी चाहिए।

उनके इच्छा करने की देर थी कि हनुमानजी को कैलाश पर्वत जाकर शिवलिंग लाने के लिए टिकट कटा दिया गया। महावीर जी तत्काल वहाँ पहुँच भी गए, पर शायद बाबा भूत नाथ अपने गणों के साथ कहीं सैर को गए होंगे। अतः हनुमान को दर्शन नहीं हुए। उतावले अन्जनी पुत्र ने तपस्या आरम्भ कर दी। शिव जी को दर्शन देने ही पड़े। शिवलिंग लेकर पवन पुत्र चटपट भागे। लेकिन देर तो हो ही गई थी। इधर शुभ महूर्त बीतता देख भगवान रामचन्द्र जी ने तब तक बालू का दूसरा शिवलिंग स्थापित करके पूजा कर ली।

इधर जब आँजनेय जी अपने साथ कैलाश से शिवलिंग लेकर आए तब सामने बालुकामय शिवलिंग पर पूजा हो चुकी थी, रामचन्द्र जी ने अपने भक्त को दूसरा शिवलिंग बनाकर पूजा शुरु कर देने की विवशता बताई, पर हनुमान जी को सन्तोष नहीं हुआ। होता भी कैसे इतनी दूर भागते हुए गए, तप द्वारा शिव जी को प्रसन्न करके उनके

द्वारा दिया गया शुद्ध (Original) शिवलिंग लाए और उसका उपयोग कुछ भी नहीं ? खामखाँ की दौड़ रही !

बात ठीक थी भी। अपने भक्त का मन रखने के लिए प्रभु ने कहा कोई बात नहीं, तुम इस बालू के शिवलिंग को हटा दो तो हम तुम्हारा लाया शिवलिंग स्थापित कर देंगे।

हनुमान जी निहाल हो गए और किलकारी मार कर लगे उस बालू से बने शिवलिंग को हटाने सारा जोर लगा दिया पर व्यर्थ। काम सहज न था। हनुमान जी अपनी सारी शक्ति लगाकर भी लिंग को टस से मस न कर सके। बालू का शिव लिंग मानो वज्र की भाँति कठोर हो गया था।

हनुमान जी को अपनी पूंछ पर बड़ा भरोसा था। हार कर उन्होंने उसका भी सहारा लिया। पूँछ लंबी करके लिंग में लपेट कर उसे उखाड़ने लगे। लेकिन कुछ भी नहीं हुआ। हनुमान जी का गर्व हरण हो गया और वे आधे जमीन में धँस गए।

मन्दिर के बाहरी दालान में हनुमान का इसी अवस्था का दर्शन होता है।

अब हम उसी बालुकामय शिवलिंग के मन्दिर के आगे खड़े थे। किंवदंती यह है कि जब गंगाजल रामेश्वर जी को चढ़ाया जाता है तब शिवलिंग ऊपर को बढ़ता है। बढ़ा या नहीं यह तो हम नहीं देख सके क्योंकि वहाँ अँधेरा काफी था और हम दूर खड़े थे। गंगाजल के अभाव में नारियल का जल भी चढ़ता है क्योंकि नारियल वृक्ष में लगे रहने के कारण यह आकाशीय जल कहलाता है जो गंगाजल के समान ही पवित्र होता है।

मैं काफी देर वहाँ खड़ा रहा पर मेरी वहाँ से हटने की इच्छा

नहीं हुई। तृप्ति नहीं हुई। मन्दिर के प्रबन्धकों पर क्रोध आता कि आजकल विज्ञान इतनी तरक्की कर गया है, भगवान का गर्भ गृह बिजली की ट्यूब लाइट से आलोकित करो। पर नहीं, वही कूप मन्डूकता ! शिवलिंग के पास काफी अँधेरा था। आँखें फाड़-फाड़ कर देखने पर भी अस्पष्ट सा दिखाई देता। तभी अपनी असमर्थता पर गुस्सा आता।

खैर किसी प्रकार मन को समझाकर चले। तीसरी परिक्रमा के रास्ते पश्चिमी दरवाजे की ओर जाने लगे। पुस्तकों में पढ़ा था कि रामेश्वरम् का दालान विश्वभर में प्रसिद्ध है। इतना लम्बा चौड़ा दालान कहीं नहीं है। मुग्धा-भाव से निरखता-परखता, छोटी मोटी खरीद करता हुआ मैं बाहर आ गया। पश्चिमी गोपुर को जी भर कर निहारा, पद रज माथे पर लगाई और यह प्रार्थना की कि भगवान फिर बुलाना, बार-बार बुलाना।

आज भगवान रामेश्वर के चरणों में लगभग बीस बार वन्दना कर चुका हूँ फिर भी मन नहीं भरता ! बार-बार आने की इच्छा होती है और हर बार आने पर पहली बार आने का-सा आनंद मिलता है।

रामेश्वरम् का शहर छोटा किंतु सुन्दर बसा हुआ। आबादी लगभग तीन हजार ही होगी। यहाँ नारियल और केले के वृक्ष और जंगली वृक्षों में बबूल के पेड़ बहुत मिलते हैं। पश्चिमी गोपुरम की तरफ बस्ती अच्छी और घनी है। इसे सिविल लाइन्स समझ सकते हैं। यहाँ से एक मील दूर गन्ध वादन पर राम झरोखा है जो बालू के ऊँचे टीले पर बना है। इस लोकोक्ति पर ध्यान दीजिए—

राम झरोखे बैठ के सब का मुजरा लेंय।
जैसी जाकी चाकरी तैसी वाको देंय।

यहाँ बैठ कर ही श्री रामचन्द्र जी ने युद्ध समिति की बैठक की थी। तथा सेतु किस जगह पर बाँधा जायगा—यह भी यहीं से देख कर निश्चय किया था। यह स्थान बहुत मनोहर है। इसी के पास ही हनुमान जी का मन्दिर भी है। यहाँ एक वैरागी साधु रहते हैं और आने-जाने वाले यात्रियों को उबाले हुए चने बाँटा करते हैं। इस मंदिर के पास ही मीठे पानी का कुँआ है। यहाँ कुंए का जल मीठा होना सौभाग्य की बात है।

रामेश्वरम् से नौ मील दूर पर धनुष्कोटि तीर्थ था। अब यह पूर्णतया समुद्र में डूब गया है। धनुष्कोटि के निकट ही प्राचीन सेतु का अवशेष बताते हैं। ऐसा हुआ कि जब श्री रामचन्द्रजी लंका जीत कर मातेश्वरी सीते को साथ लेकर उत्तर की ओर जाने लगे तो उनके द्वारा बनाए गए लंका के नए राजा विभीषण ने प्रार्थना की भगवन्! आप तो जाते हैं पर यह सेतु? इस सेतु से तो स्थानीय राजे-जमींदार बार-बार आकर लंका को पददलित करेंगे। इसका कुछ उपाय कर जाइए।

तब श्रीरामचन्द्र जी ने धनुष की कोर से इस सेतु को तोड़ दिया था। तभी से इसका नाम धनुष्कोटि पड़ गया। यह है भी धनुष की आकृति का।

श्रीरामचन्द्र जी उत्तर की ओर चल दिए तो मैं भी पीछे क्यों रहूँ? मैं भी उत्तर की तरफ चल पड़ा और शीघ्र ही पुरातन नगरी तिरुच्चिरापल्ली (त्रिचनापल्ली) आ गया था। यह भी छोटी लाइन का बहुत बड़ा जंक्शन है। यहाँ दक्षिण रेलवे का डिवीजनल कार्यालय भी है।

तिरुच्चिरापल्ली भी इतिहास-प्रसिद्ध बहुत बड़ा शहर है। आबादी दस लाख से कम न होगी। स्टेशन और रेलवे के आफिस बहुत सुंदर बने हैं। शहर भी ज्यादा दूर नहीं है और काफी बड़ा है। बीच शहर में तालाब (Teppaculam) के पास रॉक फोर्ट टेंपुल (Rock Fort Temple) में पत्थर की एक बहुत ऊँची चट्टान पर गणपति तथा शिवजी के विशाल मन्दिर हैं। ऊपर चढ़ने के लिए लगभग आठ सौ सीढ़ियाँ हैं जहाँ अच्छे-अच्छे आदमी चढ़ते समय हांफने लगते हैं।

तिरुच्चि से छह मील दूर हिंदुओं के गले का हार श्री रंगम मंदिर है। मंदिर इतना बड़ा है (छह मील के घेरे में बसा है) कि पूरा शहर मंदिर के भीतर समा गया है। इसी से मंदिर का विशाल परकोटा किले की भाँति मजबूत बना हुआ है।

तिरुच्चि और श्रीरंगम को पुण्य सलिला कावेरी नदी अलग करती है। यहाँ कावेरी माता का पाट हमारी गंगा की भाँति बहुत चौड़ा हो गया है। हमारी गंगा-यमुना की तरह ही यहाँ भी कृष्णा कावेरी बहुत पवित्र और पुण्यदात्री मानी जाती है।

कृष्णा में तो नहा नहीं सका था पर माता कावेरी में नहाने का सुयोग मिल ही गया। स्वच्छ निर्मल जल में स्नान करके मन को बहुत सुख मिला। पर न जाने क्यों इधर नदियों में नहाने का रिवाज बहुत कम है।

माता कावेरी ने श्री रंगम को दो ओर से घेर कर उसे टापू का-सा रूप दे दिया है जो बहुत सुहावना लगता है। चारों ओर धान के खेतों की हरियाली आँखों को सुख देती है।

अब जब कि मैं तिरुच्चि छोड़कर ऊपर जा रहा हूँ। तब तिरुच्चि

के आज के देखे हुए मन्दिरों के सम्बन्ध में बता देना उचित होगा। ऊपर एक फोर्ट टेंपुल का जिक्र किया है। करीब तीन सौ सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर जाने पर भगवान शंकर का प्रसिद्ध मन्दिर मिलता है। इनको यहाँ मातृकेश्वर कहते हैं। इनके बगल में ही भगवती पार्वती (मातृकेश्वरी) का मन्दिर है। दोनों मन्दिर अति प्राचीन हैं। यहाँ शिव लिंग और नंदी काफी बड़े हैं। सुन्दर काले पत्थर की गढ़ी हुई मूर्ति बड़ी भली लगती है।

तीन सौ छोटी सीढ़ी और ऊपर चढ़कर जाने में भगवान गण-पति का छोटा किन्तु सुन्दर मन्दिर है। यहाँ तक पहुँचकर अच्छे से अच्छा आदमी हाँफने लगता है; पर निरन्तर बहने वाली ठण्डी हवा के सुखद स्पर्श से उसकी सारी थकान मिट जाती है। इस शिखर से पूरा शहर बड़ा सुन्दर दिखाई देता है। चारों तरफ धान की हरियाली, दोनों तरफ माता कावेरी की जलधाराएँ, रेल का पुल बड़ा भला लगता है। ऐसे सुन्दर वातावरण में पहुँच कर यात्री सारी थकान भूल जाता है और विनाशक गणपति जी का आशीर्वाद फोकट में पा लेता है। जब इतनी दूर चढ़कर जाय तब कम से कम एक घण्टा वहाँ अवश्य बैठना चाहिए।

श्रीरंगम वैष्णवों का बहुत पवित्र स्थान है। शहर छोटा जरूर है पर सुव्यवस्थित बसा है। सारा शहर मन्दिर के भीतर ही बसा हुआ है। मुख्य मन्दिर तक पहुँचने के लिए सात बड़े-बड़े दरवाजे पार करने पड़ते हैं।

भगवान का मन्दिर बहुत बड़ा और अद्भुत कलापूर्ण है। मन्दिर में प्रधान देवता श्री रंगनाथ स्वामी हैं जो विष्णु अथवा कृष्ण के दक्षिणी रूप हैं। श्री लक्ष्मी जी, भगवान रामचन्द्र जी, गरुण जी

तथा बैकुण्ठ नाथ जी की मूर्तियाँ भी अलग-अलग स्थानों पर हैं। यहाँ केले, नारियल, गुड़ को मिलाकर मधुकरी प्रसाद बनाते हैं जो बड़ा स्वादिष्ट होता है।

श्रीरंगम से थोड़ी दूर पर ही भगवान जम्बुकेश्वर का मन्दिर है। इसके खम्भों में खुदाई का काम बहुत कलापूर्ण है। यह प्रसिद्ध मन्दिर दक्षिण की शैली पर बना है और अत्यन्त विशाल होने के साथ अति प्राचीन भी है। इसकी मूर्ति पंच-तात्विक लिंगों में से एक है। शिवलिंग जल के अन्दर है।

अब जब कि हम मद्रास की ओर जा रहे हैं अतः यहाँ उन मन्दिरों का वर्णन कर देना अच्छा होगा जो हमारे रास्ते में नहीं पड़े या जहाँ जाने का समय नहीं मिल पाया।

तमिलनाडु मन्दिरों का आगार है। एक से एक बढ़-चढ़कर मन्दिर वहाँ मिलते हैं। हमने पक्षी तीर्थ की बड़ी प्रशंसा सुनी थी। यह चिंगलपेट स्टेशन से नौ मील दूर है और मोटर या तांगे से जा सकते हैं।

पक्षी तीर्थ का तमिल नाम तिरुकुली-कुण्डरम है। यहाँ पहाड़ की चोटी पर बने हुए मन्दिर के आँगन में अपने नियत समय पर दोश्वत पक्षी न जाने कहाँ से आते हैं, पुजारी के हाथ का प्रसाद ग्रहण करते हैं और फिर अनन्त अन्तरिक्ष की ओर उड़ जाते हैं।

पक्षियों का यह जोड़ा पुरातन काल से इसी प्रकार आकर अपना भोग ले जाता है। लोग उन्हें शिव पार्वती मानते हैं। शिव जी यहाँ भगवान भक्तेश्वर हैं और पार्वती जी त्रिपुर सुन्दरी हैं। मन्दिर किलानुमा है और बहुत बड़ा है। चारों ओर चार बहुत ऊँचे गोपुर हैं।

चिंगलपेट से ब्रांच लाइन पर कांजीवरम् है जिसे संस्कृत में कांचीपुरम भी कहते हैं। यहाँ शिवकांची और विष्णु कांची नामक दो प्रसिद्ध मन्दिर हैं। इस प्रकार इस शहर पर शिव तथा विष्णु का समान अधिकार है, पर शिवकांची में भगवान शंकर का मन्दिर बहुत विशाल है। पहला गोपुर ग्यारह मंजिल ऊँचा है। मुख्य द्वार के चौखटे 35-40 फीट ऊँचे हैं और एक ही पत्थर के बने हैं। मन्दिर में भगवान शंकर का बालुकामय लिंग है। शिव जी के पाँच क्षेत्रों में पृथ्वीलिंग यही है। यहाँ मूर्ति पर जल नहीं चढ़ाते तेल लगाते हैं। मन्दिर के बाईं ओर आम का बहुत बड़ा पेड़ है। इसे आम्रकेश्वर कहते हैं। इसमें एक तने की चार डालियों पर चार प्रकार के फल लगते हैं। जो अपने रूप रंग, स्वाद में आम से भिन्न-भिन्न हैं।

शिवकांची में ही मन्दिर से दो फर्लांग की दूरी पर नगर के बीचों-बीच भगवती पार्वती का मन्दिर है। यहाँ भगवती पार्वती को माता कामाक्षी कहते हैं।

विष्णु कांची में महाराज बलि और वामन की कथा अंकित है। पहली मूर्ति में भगवान वामन रूप में खड़े हैं और महाराजा बलि उनको संकल्प करके तीन पग पृथ्वी दे रहे हैं। पास ही एकाक्ष शुक्राचार्य जी वामन महाराज को घूर रहे हैं।

दूसरी मूर्ति में भगवान विष्णु का विराट रूप दिखाया गया है। यह मूर्ति बहुत विशाल और ऊँची है। भगवान दानवराज बलि पर पैर रखे दिखाई देते हैं। दर्शन करने के लिए बाँस में मशाल बाँधना पड़ता है तब कहीं स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

अन्यत्र नृसिंह भगवान का अति प्राचीन और विशालकाय मंदिर

है जिसके दो भाग हैं। नीचे के भाग में भगवान नृसिंह अपने दर्शन दे रहे हैं और ऊपर की मंजिल में भगवान विष्णु की शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुजी मूर्ति है। भगवान के मस्तक पर हीरे का तिलक बहुत शोभा पाता है। इस मन्दिर में एक कोने में सोने की छिपकली भी दिखाई जाती है। भगवती महालक्ष्मी का सुन्दर किन्तु छोटा मन्दिर भी पास में है।

इस ओर के (तमिलनाडु में) सब मन्दिरों में पूर्जन-अर्चन दिन भर होता रहता है। बारम्बार श्रृंगार और भोग लगा करता है। कोई न कोई त्योहार लगा ही रहता है।

विल्लुपुरम से वत्तीस किलोमीटर दूर पर पांडीचेरी है। यह पहले फ्रांसीसियों के प्रबंध में था अब स्वतन्त्र होकर भारत का एक राज्य है। यहाँ अरविंदाश्रम दर्शनीय है। योगेश्वर अरविंद की समाधि को देखकर चित्त को अदभुत शांति मिलती है।

आगे चलने पर चिदंबरम् स्टेशन मिलता है। भगवान शिव जी का मन्दिर स्टेशन से डेढ़ किलोमीटर पर है। सवारी आसानी से मिल जाती है पर पैदल भी जा सकते हैं—अधिक दूरी नहीं है। यहाँ हेमपुष्करिणी नामक एक बहुत बड़ा 200 फीट चौड़ा और 300 फीट लम्बा—अत्यन्त मनोहर तालाब है। चारों तरफ खूबसूरत बरामदे बने हुए हैं जहाँ बैठकर लोग पूजा-पाठ किया करते हैं। लोगों का विश्वास है कि इस तालाब में स्नान करने से बहुत पुण्य मिलता है।

तालाब के समीप ही भगवान नटराज का अति प्राचीन मन्दिर है। नृत्य करती हुई नटराज की मूर्ति बहुत भाव्य है। यात्री दर्शन करके तृप्त हो जाता है। इस मन्दिर में नटराज की दो मूर्तियाँ

और हैं। इनके दर्शन बारह बजे स्नान कराते समय मिलते हैं। इसमें एक मूर्ति तो ठेठ (Pure) माणिक्य की है। इसके समक्ष कपूर की आरती करते हैं तब सारी मूर्ति—लाल मणिमय होकर चमकने लगती है।

यह मूर्ति दो रुखी है। मूर्ति के एक ओर कपूर की आरती करने पर भगवान नटराज के दर्शन होते हैं और दूसरी ओर कपूर जलाने पर चतुर्भुज भगवान विष्णु दिखाई देते हैं। अद्भुत दर्शनीय मूर्ति है।

भगवान शिव के जगमोहन रूप के सामने ही विष्णु भगवान का मन्दिर है। यहाँ विष्णु भगवान शेष शय्या पर शयन कर रहे हैं। पास ही देवी लक्ष्मी का मन्दिर है।

कुंभकोणम एक पौराणिक नगर है और कुम्भ के अवसर पर यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है। यहाँ शिव, विष्णु, राम आदि के बहुत प्राचीन मन्दिर हैं। शहर छोटा ही है पर जलवायु स्वास्थ्य-वर्धक है।

तंजावूर भी इतिहास प्रसिद्ध पौराणिक नगर है। यहाँ वृहदीश्वर (शिवजी) का मन्दिर अत्यन्त प्राचीन-ईसा से भी सात सौ साल पहले का—बना हुआ है। मन्दिर क्या है, अच्छा-खासा किला है। चारों ओर ऊँचे-ऊँचे कोट हैं और बाहर खाई जिसका पानी अब सुखा दिया है।

मन्दिर में प्रवेश करने पर तीन बड़े कमरों में होकर तब शिव जी के सम्मुख पहुँचते हैं। भगवान शिवजी यहां वृहदीश्वर हैं। यथा नाम तथा गुण:, इनकी लिंग प्रतिमा बहुत वृहत है। लिंग 10-12 फीट नीचे है और ऊपर लगभग तिगुनी ऊँची मूर्ति है। सीढ़ी लगा-कर स्नान कराते हैं। सब मिलाकर 30-40 फीट लम्बी और

20-22 फीट मोटी लिंग मूर्ति है। इतनी विशाल लिंग मूर्ति कहीं भी देखने को नहीं मिलती। आजकल तो इतना बढ़िया और विशाल काला पत्थर ही मिलना दुर्लभ है, फिर इतना सुन्दर गढ़ा जाना तो बहुत कठिन है ही।

जब भगवान इतने विशाल हों तब उनके वाहन नंदी महाशय क्यों पीछे रहने लगे ! नंदी जी की बैठक समेत लम्बाई लगभग 20 फीट ऊँचाई 12 फीट और चौड़ाई 10 फीट होगी। वजन सात सौ क्विटल से कम क्या होगा आजकल वह यात्रा करें तो छोटी लाइन के मालगाड़ी के लम्बे-खुले वाले तीन डिब्बे भी काफी न होंगे। इनको संसार का वृहत नंदी (Great Bull of the world) कहते हैं।

माता पार्वती का मन्दिर भी बड़ा और दर्शनीय है। और भी अनेक मन्दिर हैं।

तंजावूर का दूसरा दर्शनीय स्थान है—सरस्वती महल ग्रंथालय-इसमें प्राचीन ग्रंथों का बहुत बड़ा संग्रह है। तालपत्र तेलुगु और तमिल लिपि में लिखे हजारों बहुमूल्य ग्रन्थ यहाँ सुरक्षित हैं। वेदों के कई भाष्य हैं। महाभारत के ही कोई बीस संस्करण यहाँ मिल जायेंगे। इसी प्रकार यहाँ अनेक भाषाओं के अनेक विषयों के ग्रन्थों का विशाल संग्रह है।

तंजावूर जिले में तिरुवैयार न केवल तीर्थ स्थल के रूप में विख्यात हैं बल्कि कर्नाटक संगीत के जनक सन्त त्यागराज की जन्म भूमि के कारण भी प्रसिद्ध है। सन्त त्यागराज बड़े राम भक्त थे। उन्होंने 'नौका मन्त्र' और 'नौका-विजय' नामक दो गीति-नाट्य (यज्ञगान) भी लिखे जिनका आज बड़ा महत्व है।

मद्रास में प्रवेश

मद्रास ! युगों की साध मद्रास !! तुम्हें बार-बार नमन् !!! दूसरी दुनियाँ में दूसरी दुनियाँ ! अब मैं ऐसे शहर में था जहाँ अधिकांश तमिल बोली जाती है, जहाँ हर कोई अँग्रेजी जानता है—अँग्रेजी पर अपना अधिकार रखता है। जहाँ के लिए यह प्रसिद्ध है कि वहाँ के कुली और रिक्शे वाले भी अँग्रेजी समझ लेते हैं और अँग्रेजी में बात करते हैं। जहाँ हिन्दी बोलने समझने वाला एक अलग ही बाजार है जो साहूकार पेट कहलाता है, जहाँ मारवाड़ी जैनी, सिंधी तथा उत्तर भारतीय हिन्दू मुसलमान साथ-साथ रहते हैं।

क्लॉक रूम (Cloak Room) में सामान जमा कर मैं स्टेशन के बाहर आया। उन दिनों कुछ स्थानों के लिए ट्राम गाड़ी का प्रचलन था, जो शाँतिप्रिय मदरासियों को रास नहीं आया। अब तो कलकत्ते के कुछ हिस्सों को छोड़कर पूरे देश में ट्राम गाड़ी का प्रचलन बंद हो चुका है। अच्छा ही हुआ। बड़ी खड़खड़ होती थी। सोना, बात करना मुश्किल था।

यहाँ दक्षिण भारत में जिस चीज को पसंद किया जाता है उसे पूर्ण रूप से अपना लिया जाता है। खादी का प्रचार हुआ तो घर-घर खादी या हैंडलूम कपड़े का पहनावा शुरू हो गया। पुरुष या महिला-सबने उसे प्रेम से अपनाया। इसी प्रकार हिन्दी ने जब दक्षिण में महात्मा गाँधी के प्रयत्नों से प्रवेश किया तो इसका भी वहाँ बड़ा अच्छा वातावरण बना। स्वदेशी की भाँति हिन्दी प्रेम भी घर-घर घुस गया।

उन दिनों मद्रास प्रान्त में—आज के तमिलनाडु—में हिंदी विरोध की कोई कल्पना भी नहीं करता था। वरन् वर के माता-

पिता जब विवाह-हेतु किसी कन्या का चयन करने जाते थे तो और फरमाइशों के साथ यह भी जानकारी चाहते थे कि कन्या हिन्दी 'अच्छी तरह' पढ़ी है या नहीं। उनका आशय यह था कि जब मेरा लड़का सर्विस में उत्तर भारत या दिल्ली जायगा, जहाँ हिन्दी ही बोली-सुनी जाती है तो वहाँ हमारे लड़के और बहू को कठिनाई तो नहीं होगी।

बात हँसी की जरूर है पर है सत्य ! पंजाब में, बंगाल में, दक्षिण भारत में जहाँ भी हिन्दी गई, उसे महिलाओं ने, देवियों ने प्रेम से अपनाया। दक्षिण भारत का दृष्टिकोण तो ऊपर लिखा है। पंजाब में इस संबंध में बड़ी दिलचस्प बात थी। लड़का-लड़की को पसन्द करते समय पूछता था—हिंदी तो ठीक से पढ़-लिख लोगी मैं प्रेमपत्र लिखूँगा तो उसे पढ़वाने किसी दूसरे के पास तो नहीं जाओग ?

तो, उन दिनों में—आज के तमिलनाडु में भी हिन्दी के प्रति बहुत शुभ और उत्साहप्रद वातावरण था। आर्थिक दृष्टि से सभी लोग हिंदी सीखने-सिखाने में दत्तचित्त थे। काश, राष्ट्रभाषा का निर्णय लेते ही हिंदी राष्ट्रभाषा बना दी जाती और यह पन्द्रह वर्ष की अवधि वाला झमेला न रखा जाता तो आज स्थिति इतनी विकट न होती। दक्षिण भारत को छोड़िए वह तो अपना ही अंग है—सुदूर दक्षिण पूर्व एशिया में आज हिंदी का बोल बाला होता और तब चीन और जापान वाले भी सहर्ष देवनागरी लिपि को अपना लेते। तब हिंदी भी विदेशी मुद्रा पैदा करने लगती।

सब ओर ऐसा उमंग भरा वातावरण था कि मेरे मित्र एक दक्षिण भारतीय हिंदी प्राध्यापक ने तो मुझसे यहाँ तक कह दिया कि घबड़ाते क्यों हैं ? नोट कर लीजिए। आज से दस पन्द्रह साल बाद तो हम आपको हिंदी पढ़ाने उधर आया करेंगे।

हाँ, उन्होंने शेखी नहीं मारी थी। दक्षिण भारत वालों में यही तो विशेषता है। अँग्रेजी की भाँति हिन्दी में भी निष्णात होकर दिखा दिया। केन्द्रीय हिंदी निदेशालय के निदेशक के पथ पर दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध विद्वान स्व० ए० चंद्रहासन नियुक्त किए गए। आगरा में केन्द्रीय हिन्दी संस्थान है। यहाँ भी पाँच-छह दक्षिण भारतीय विद्वान हिंदी पढ़ाते हैं। मद्रास, मदुराई, केरल, कोचीन, कालीकट, बेंगलूर, मैसूर, तिरुपति, अन्नामलाई कर्नाटक, वाल्टेयर आदि सभी विश्वविद्यालयों में हिंदी विभाग के अध्यक्ष अब वहीं के विद्वान हैं। ये सभी धुन के पक्के हैं। जो कहा उसे करके दिखा दिया।

यहाँ मद्रास शहर के संबंध में थोड़ा लिखना उचित होगा। मद्रास सेंट्रल बड़ी लाइन का स्टेशन है। इसके पूर्व में 3 किलोमीटर दूर मद्रास 'बीच' (समुद्री किनारा) है और इन दोनों प्रमुख स्थानों को जो बड़ी सड़क जोड़ती है उसे नेताजी सुभाषचन्द बोस रोड कहते हैं। उसको पार करने के बाद साहू कारपेट आता है जो लगभग 6 किलोमीटर के वर्ग में स्थित है। उत्तर भारतीय सबसे अधिक यहीं मिलेंगे और यहीं बड़ी-बड़ी धर्मशालाएँ भी है। नेताजी सुभाष रोड शुरू होते ही बड़ा डाकखाना, तारघर और हाईकोर्ट है। इसे 'पेरी' (Perrys) भी कहते हैं और यहीं से पूरे शहर को सिटी बसें जाती हैं। सड़क पार करके दक्षिण की ओर मुड़िए तो बाएँ हाथ पर मद्रास बीच स्टेशन और मद्रास 'बीच' है। यह समुद्र तट भी बहुत अच्छा है और शाम को यहाँ सैलानियों की अच्छी खासी भीड़ हो जाती है। सड़क के दाहिनी ओर प्रसिद्ध मद्रास विश्वविद्यालय है। यहाँ के हिंदी विभाग के अध्यक्ष डा० शंकर राजू नायडू हैं जो हिंदी के अच्छे विद्वान और लेखक हैं। ये आगरे तथा

काशी में काफी समय रहे और हिंदी इतनी अच्छी और फर्राटे के साथ बोलते हैं कि यदि हम आपको इनका परिचय न दें तो आप कह नहीं सकते कि यह उत्तर भारतीय नहीं हैं।

मद्रास का फैशनेबुल बाजार माउंट रोड है। मद्रास का गड़बड़झाला बाजार मद्रास सेंट्रल के पास मूर मार्केट है जहाँ 'सुई से लेकर हाथों तक' सस्ते दाम में मिल जाता है। इसी के बगल में कारपोरेशन बिल्डिंग है।

मद्रास से दक्षिण में प्रायः छोटी लाइन ही और तंजावूर, तिरुच्चि, रामेश्वरम, त्रिवेंद्रम आदि को छोटी लाइन ही जाती है। इसके लिए मद्रास एगमोर स्टेशन से गाड़ियाँ छूटती हैं। मद्रास में लोकल ट्रेनें (छोटी लाइन) बिजली से चलती हैं। विद्युतीकरण विल्लुपुरम तक हो गया है। मैलापुर, त्रिप्लीकेन, अडयार, त्यागराय नगर आदि मद्रास के प्रमुख उपनगर हैं।

मद्रास में सदा ही गर्मी रहती है—सर्दी नाम मात्र को भी नहीं होती। आबादी के हिसाब से कलकत्ता और बम्बई के बाद मद्रास का नम्बर तीसरा है पर यहाँ कलकत्ता बम्बई जैसी भीड़-भड़क्का मारा-मारी नहीं है। वहाँ रहने में घबड़ाहट होती हैं यहाँ वैसी बात नहीं है।

मद्रास में मन्दिर भी बहुत हैं। साहूकार पेट और मैलापुर में कई भव्य मन्दिर हैं। मैलापुर वाला बहुत प्राचीन और भव्य है। मन्दिर के आंगे एक बड़ा टेप्पाकुलम (तालाब) है जिसमें पानी न होने से अब सूख रहा है। कई प्राचीन चर्च, मस्जिदें, गुरुद्वारे और जैन मंदिर भी हैं।

सब मिलाकर मद्रास एक अच्छा शहर और गेटवे आफ रामे-

श्वरम् होने के कारण प्रतिवर्ष लाखों उत्तर भारतीय तीर्थयात्री यहाँ से गुजरते हैं।

मद्रास भारत का तीसरा बड़ा शहर है पर कलकत्ता या बंबई से इसका मुकाबला नहीं हो सकता। बंबई-बंबई है जहाँ रेल-पेल, ढका-पेल है, जहाँ झुंड के झुंड व्यापारी, अमीर-गरीब विद्वान और अपढ़ सभी बने-ठने घूमते दिखाई देते हैं। यहाँ मद्रास में सादगी और शालीनता के दर्शन होते हैं। नंगे बदन केवल लुँगी तहमत बाँधे। (बहुत हुआ तो बनियान पहन ली। काले तिलंगे अधिक मिलेंगे। आधे से आधा सिर घुटाए द्राविणी ब्राह्मण सिर के पीछे काले या सफेद बालों की लंबी चुटिया का जूड़ा बाँधे मोहक दृश्य उपस्थित करते हैं। लक्ष्मी का जो वैभव-विलास बंबई में देखने को मिलता है वह केवल वहीं है और इसीलिये बम्बई-बम्बई है। मद्रास भी उसी रास्ते पर चलता नजर आता है पर मंजिल बहुत दूर है।

मेरे लिए मद्रास में एक और तीर्थ स्थान था दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा जो त्यागरायनगर में थी। मैं बड़े चाव से वहाँ गया। सभा के तत्कालीन प्रधानमंत्री से भेंट नहीं हो सकी पर सहायक मंत्री पं० रघुवर दयालु मिश्र (अब स्वर्गीय) मुझसे बहुत प्रेम से मिले। मुझ आकिंचन को उन्होंने गले से लगा लिया। उनके रोम-रोम से प्रसन्नता फूटी पड़ रही थी। वे फर्रुखाबाद (उत्तर प्रदेश) के रहने वाले थे पर हिंदी प्रेम मतवाले होकर घर बार छोड़कर मद्रास पहुँच गए थे। हिंदी ही ओढ़ना हिंदी ही बिछौना; हिंदी ही खाना हिंदी ही पीना। सब कुछ हिंदी मय था।

मिश्र जी का स्वभाव बड़ा हँसमुख और मिलनसार था। उनका भव्य चौड़ा मुख सदैव विहँसता रहता था। मुस्कान चेहरे से फूटी पड़ती थी।

मैं निहाल ! आह ! यही पं० रघुवर दयाल मिश्र जी है !! बड़प्पन तो छू भी नहीं गया है । कहीं भी अहंकार की झलक नहीं अब विश्वास हो गया कि रघुवर जी राम जी ने गुहराज को इसी प्रेम से लिपटाया होगा । तो पुरात्व इतिहास भी सच है ।

कृतज्ञता से गद्‌गद् होकर मैंने पूछा पंडित जी ! मैं पहली बार मद्रास आया हूँ । मेरे योग्य कोई सेवा बताइए; क्या करूँ, कैसे करूँगा ।

मिश्र जी बोले—बेटा ! तुम बड़े मौके से आए हो । हम लोगों को तो तुम्हारे जैसे लोगों की ही जरूरत थी । बेटा हम लोगों ने तुम्हारे लिए गुड़ाई-सिंचाई करके खेत तैयार कर दिया है । अब तुम लोग इस खेत में बीज डाल, फसल उपजाओ और खाओ ।

मन्द-बुद्धि होने के कारण मैं उनका आशय तत्काल नहीं समझ सका । फिर पूछा—इस सूत्र वाक्य की व्याख्या तो कीजिए ।

पंडित जी मुस्कराए और बोले—बेटा ! मेरा मतलब यह है कि अथक परिश्रम करके हम लोगों ने यहाँ इस ओर हिंदी का प्रचार प्रसार किया है । यहाँ के लोगों में हिंदी के प्रति प्रेम भी बढ़ रहा है । पर हमारी सारी मेहनत इस लिए बेकार हो रही है कि यहाँ के लोगों को मनचाही पुस्तकें नहीं मिल पाती । इससे इनका हिंदी पढ़ने का उत्साह मंद पड़ने लगता है । इसलिए मेरी तुमसे और सबको यही सलाह है कि यहाँ आओ, यहाँ के लोगों की आवश्यकताओं को समझो और इनको मनचाही पुस्तकें दो, मुफ्त मत दो, मुनाफे के साथ दो । इनको भी सुखी करो और खुद भी सुख उठाओ ।

महान आत्माएँ सदैव परोपकार ही करेंगी । आज पंडित रघुवर दयाल स्वर्ग में हैं । उन्होंने मुझसे जो कहा था, पूरा कर दिया । मैंने उनकी बात को दिलो जान से माना, उनकी बात को पूरा

आदर दिया। आज जो सुख, जो आदर, जो प्रेम मुझे मिला और मिल रहा है उन सबका श्रेय स्वर्गीय श्री रघुवर दयालु मिश्र प्रभूति उन महान आत्माओं को ही है।

काफी समय हो गया। अपने घर से कभी इतने समय तक बाहर नहीं रहा। अभी मेरी उम्र ही क्या थी? खेलने खाने के दिन थे। बीबी-बच्चों की याद सताने लगी। वापसी यात्रा जल्दी-जल्दी करने लगा।

हावड़ा मेल में बैठकर मैं गुडूर, नेल्लोर, तेनाली, विजयवाड़ा, एलूरू, राजमंड्री होता हुआ विशाखापट्टनम आ गया। यहाँ मुझे आंध्र विश्वविद्यालय वाल्टेयर में हिंदी विभाग के अध्यक्ष साहित्याचार्य जी सुंदर रेड्डी जी से मिलना था।

हिंदी प्रचार के इतिहास में दो महान विभूतियों का विशेष योगदान है। एक केरल वाले स्व० श्री ए० चंद्रहासन जो काफी समय कोच्चीन विश्वविद्यालय के अध्यक्ष, रहकर बाद में केन्द्रीय हिंदी निदेशालय दिल्ली के डाइरेक्टर बने। दूसरे ये सज्जन आंध्र विश्वविद्यालय के विभागाध्यक्ष प्रो०जी० सुंदर रेड्डी साहित्याचार्य है।

प्रो०जी० सुंदर रेड्डी जी दो दशक से भी अधिक समय से हिन्दी विभागाध्यक्ष हैं। हिंदी प्रचार-प्रसार में आपकी सेवा चिरस्मरणीय रहेगी। उनसे जब मैं मिला तो ऐसा लगा मानो किसी निस्पृह तपस्वी के दर्शन कर रहा हूँ। उनकी मिलन सारिता से इतना प्रभावित हो जाता हूँ कि घंटो उनके पास बैठा बातें करता रहूँ, तबियत नहीं भरती अनुभव का विशाल भंडार है उनके पास।

समय भाग रहा है। समय के साथ मैं भी भाग रहा हूँ। वाल्टेयर से रायपुर, नागपुर, इटारसी, झांसी, कानपुर होता हुआ मैं अपने घर आ जाता हूँ।

दक्षिण भारत की यात्रा कभी समाप्त नहीं होती। मेरे परिचित कहते हैं कि मैं उत्तर और दक्षिण के बीच एक सेतु का काम कर रहा हूँ। हो सकता है। पर चाहे जितनी बार दक्षिण जाऊँ, तबियत नहीं भरती। कभी-कभी तो ऐसा महसूस होता है कि मैं एक शाप ग्रस्त दक्षिण भारतीय ही हूँ जो भगवान की इच्छा से इस बार उत्तर भारत में पैदा हो गया है। सज्ञान होते ही जब पहली बार दक्षिण भारत के दर्शन किए थे तब ऐसा लगा था मानो मैं अपने घर अपने गाँव आ गया हूँ। अब तो वास्तव में अपने घर-बेंगलूर-में ही हूँ। बेंगलूर की ममता ने, कन्नड़ भाइयों के निश्छल प्रेम ने मुझे ऐसा बाँध लिया है कि लखनऊ जाने की इच्छा ही नहीं होती। जाता हूँ तो मन अपने गाँव बेंगलूर भाग आने के लिए उतावला हो उठता है। अब तो मैं चाहता हूँ कि मेरी मुक्ति भी यहीं हो।

दक्षिण के चारों प्रदेशों में घूमा, बहुत घूमा, परंतु मुझसे एक भूल होती रही जिसका ध्यान अब आया है। तेलुगु, कन्नड, तमिल और मलयालम न जानने से कभी-कभी कठिनाइयाँ भी झेलीं परन्तु केवल हिंदी जानने वालों से संपर्क रखने के कारण कभी उक्त भाषाओं को भी सीखने का प्रयत्न नहीं किया, जिसका आज मुझे हार्दिक खेद है। कारण यह रहा है कि मेरी हर यात्रा बहुत भाग दौड़ की होती थी—रात भर सफर और दिन भर हिन्दी जानने वालों से व्यापार की बातचीत। आज कम से कम कन्नड़ भाषा सीख ली होती तो इस वक्त मुझे बड़ा सुख मिलता। अतः मेरी सभी को सलाह है कि थोड़ा बहुत ज्ञान उन चारों भाषाओं का अवश्य प्राप्त कर लिया जाय; इससे बहुत सी सामान्य कठिनाइयों से बचा जा सकता है।

जय कृष्णा, जय कन्या कुमारी।
जय गोदावरी, जय कावेरी॥

—:o:—

आनंद कुमार शुक्ला

अनंतवाणी दृष्ट प्रकाश निलयम

चौपाटियां रोड लखनऊ - 3

Mahendra Kumar Shukla

S/ Arjun Prasad Tripathi

Vill- Bhagatipur

Post- Kijiyama

Dist Rae Bareli